॥ श्रीहरिः ॥ 1022▲

निष्काम श्रद्धा और प्रेम

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

जयदयाल गोयन्दका

1022

॥ श्रीहरिः ॥

निष्काम श्रद्धा और प्रेम

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

जयदयाल गोयन्दका

निवेदन

गीताजीके तीसरे अध्यायके १८वें श्लोकमें कहा है—

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥

जो महात्मा हैं वह कोई काम करें, उन्हें करनेसे भी कोई प्रयोजन नहीं है और न करनेसे भी कोई प्रयोजन नहीं है। उन्हें जड़-चेतन किसीसे भी कोई प्रयोजन नहीं। महात्माका सम्पूर्ण भूतोंसे कुछ भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं रहता, फिर भी उनके द्वारा संसारके कल्याणके कार्य किये जाते हैं। परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी एक बड़ी भूख स्वाभाविक थी कि जीवमात्रका कल्याण हो; अतः उन्हें प्रवचन देनेका बड़ा उत्साह था। घंटों-घंटों प्रवचन देकर भी थकावट महसूस नहीं करते थे। उन प्रवचनोंको उस समय प्रायः लिख लिया जाता था। उनका कहना था— 'जबतक ये बातें जीवनमें न आ जायँ यानी कल्याण न हो जाय तबतक ये बातें हमेशा ही नयी हैं, इन्हें बार-बार सुनना, पढ़ना, मनन करना और जीवनमें लानेकी चेष्टा करनी चाहिये।' उनके द्वारा दिये गये कुछ प्रवचनोंको यहाँ पुस्तकरूपमें प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें कुछ स्थानोंपर पहले प्रकाशित हुई बात भी आ सकती है; परन्तु पुनरुक्ति अध्यात्म-विषयमें दोष नहीं माना गया है। अध्यात्म-विषयमें पुनरुक्ति उस विषयको पुष्ट ही करती है, अतः हमें इन लेखों-बातोंको जीवनमें लानेके भावसे बार-बार इनका पठन तथा मनन करना चाहिये।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरि: ॥

विषय-सूची

❑❑

॥ श्रीहरिः ॥

दयाका तत्त्व

एक क्षणमें, एक दिनमें, एक सालमें सभी समय लाभ हो सकता है। यह सब साधकपर निर्भर है। साधक यह निश्चय कर ले कि आजसे साधन गड़बड़ नहीं होगा। यह मनमें निश्चय कर ले कि मेरेमें किसी प्रकारका अवगुण और विघ्न आ ही कैसे सकता है। पूर्वमें जो मिथ्या बोला गया वह इसलिये बोला गया कि सत्यका महत्त्व नहीं समझा। यदि किसी प्रकार भूलसे बोला जाय तो उसके लिये भी बड़ा पश्चात्ताप होना चाहिये कि ऐसी भूल क्यों हुई? घोर समुद्रमें डूबते हुए आदमीको अगर जहाजका रस्सा मिल जाय तो वह उसे भूलसे भी नहीं छोड़ सकता; क्योंकि रस्सा छोड़ना ही उसके लिये मृत्यु होगी। जिसको भगवत्प्रेममें, भगवत्-चिन्तनमें, भगवद्भावमें आनन्द आता है वह उसको छोड़ ही कैसे सकता है। जो मनुष्य इस प्रकारकी धारणा कर लेता है, उसका निश्चय दृढ़ हो जाता है। अगर किसीमें दोष आ जाता है तो उसमें श्रद्धाकी ही कमी है। उसने सत्यका महत्त्व जाना ही नहीं। एक बार मनुष्यको शान्ति और आनन्दका मार्ग मिल जाय तो कोई भी समझदार आदमी उस रास्तेको नहीं छोड़ सकता। प्रभुकी दया है, योगक्षेम वहन करनेवाले प्रभुकी बिना माँगे ही मदद है, फिर विचलित होनेका कोई कारण ही नहीं है।

एक बार वह गिर जाता है तब वह सावधान हो जाता है, फिर नहीं गिरता। जैसे मकानका दरवाजा छोटा है, चोट लगनेसे सावधान हो जाता है। कई बार असावधानीसे फिर चोट लग जाती है। तब पुनः सावधान होता है फिर उसको बार-बार चोट नहीं लगती। जैसे कोई लड़का गिरता है, चोट लगते ही रोता है, फिर भूल जाता है, फिर गिरता है, फिर रोता है, माँ समझाती है अब तो सावधान हो जाओ। वही जब समझदार हो जाता है। तब चोट नहीं खाता।

प्रवचन-तिथि—दिनांक १६-११-१९३७, दोपहर, गोरखपुर।

प्रभुकी दयाका प्रभाव अपरिमित है। जितनी हमलोगोंकी कल्पना है, उससे अपरिमित है। प्रभु असम्भवको भी सम्भव कर देते हैं। जो साधनकी कमी प्रतीत होती है वह प्रभुकी दयापर रख दें तो एक क्षणमें वह सारी पूर्ति कर सकते हैं। प्रभुकी दयाका स्वरूप समझनेसे वह विकसित हो जाती है। उस परदेको हटानेसे उसका रहस्य खुल जाता है। वह प्रत्यक्ष हो जाती है। उसका रहस्य महात्मा कहते हैं। हर देश, हर काल, हर वस्तुमें प्रभुकी दयाको पूर्ण देखो। दया-ही-दया भरी हुई है। ओत-प्रोत देखो। न दीखे तो भी देखो। विवाहमें ध्रुवतारा दिखाया जाता है, बादल हों तो मान लेते हैं कि ध्रुव है। बस दया-ही-दया भरी पड़ी है। यह मान लेनेपर मायाका परदा टिक नहीं सकता।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७। १४)

यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परंतु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस मायाका उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।

उस दयाके प्रतापसे परम पद पा जाता है। सदा, सर्वदा, सर्वत्र दयाके सिवाय दूसरी बात नहीं है। एक महात्मा एक गृहस्थके घर गये। गृहस्थने कहा कि महाराज बड़ी दया की; किन्तु घरमें चार दिनसे अन्नका दाना ही नहीं है, हमलोग भूखे बैठे हैं। महात्माने कहा कि तुम्हारे समान धनी तो कोई नहीं है। गृहस्थने कहा कि महाराज आपकी बात समझमें नहीं आती। महात्माने एक पत्थरकी तरफ संकेत करके कहा कि यह क्या है? गृहस्थने कहा कि यह चटनी पीसनेका पत्थर है। महात्माने कहा तुम्हारे पास लोहेका जो सामान हो वह ले आओ। उस पत्थरसे छूते ही लोहा सोना बन गया। वह पारस पत्थर था। जैसे पारसकी बात बतायी गयी। महात्मा दया करनेवाले थे, उस दीन

पुरुषमें श्रद्धाकी कमी ही थी। यहाँ प्रभुकी दया पारस है। उसके छूनेसे लोहा सोना बन जाता है। जिन-जिन स्थलोंमें हमें कालरात्रिका दुःख दीखता था, ईश्वरकी दया माननेके साथ ही वहाँ सुख-आनन्द हो जाता है। इससे अनुमान कर लेना चाहिये। यही उसका रहस्य है। छोटी चीजें जैसे सोना हुईं वैसे ही बड़ी-बड़ी भी हो सकती हैं।

यदि सारा घर सोनेसे भरना है तो सर्वत्र हर समय दया-ही-दया समझे। उसके सिवाय कोई दूसरी चीजकी गुंजाइश ही नहीं, परमात्मा और परमात्माकी दयामें दूसरी चीज घुसनेकी गुंजाइश नहीं है।

इस दयामें कितने गुण हैं, यह मुझे पता नहीं है। ईश्वरमें जितने गुण बताये जाते हैं वे ईश्वरकी दयासे सारे-के-सारे उस साधकमें आ जाते हैं। ईश्वरसे भी ज्यादा गुण ईश्वरकी दयासे समझे। जो दयाका स्वरूप है वही दयाका तत्त्व है। जब यह मायाका परदा दूर हो गया तभी दयाका तत्त्व जान गया। ईश्वर प्राप्त हो गये। ईश्वरकी दयाकी महिमा ईश्वर भी नहीं जान सकते। फिर मैं क्या कह सकता हूँ। मनुष्यको अपना कर्तव्य ही करना चाहिये। इसके बाद उसको उलाहना नहीं है। ईश्वरकी दयाके प्रकरणको सुननेसे ही लाभ है। इस प्रकरणको बार-बार सुननेसे दया प्रत्यक्ष हो जाती है। जैसे-जैसे इसको समझता है वैसे-वैसे यह प्रतीत होता रहता है कि आज ठीक समझा। जैसे पर्वतपर चढ़नेवाला जिस चोटीपर जा पहुँचता है, देखता है यही सबसे ऊँचा पर्वत है। फिर और आगे जाता है तो और ऊँची चोटीपर जा पहुँचता है।

जो उत्साहसे चढ़े जाता है वह पहुँच ही जाता है। पहाड़की चढ़ाईमें तो अनेक जोखिम हैं; किन्तु इस मार्गमें कोई विघ्न नहीं है। भगवान्‌की प्रतीक्षा है। कोई चिन्ता नहीं है, जैसे-जैसे आगे बढ़ता जाता है उतना-उतना ही आनन्द बढ़ता जाता है। शेषमें—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

यह सन्तोष हो जाता है कि इससे बढ़कर और आनन्द नहीं है, वहाँ तुष्टि-पुष्टि सबकी पूर्णता हो जाती है। संसारमें जितना लौकिक दुःख है, सारा-का-सारा उसपर आ जाय तो भी उसको दुःख व्यापना तो दूर रहा, वह सुखकी स्थितिसे विचलित ही नहीं होता। उसको संतोष-विश्वास हो जाता है कि इससे बढ़कर और कुछ नहीं है। भक्त और भगवान्‌के विषयमें आनन्द बहुत अद्‌भुत बात है। नयी बात है, कभी पुरानी नहीं होती। यह प्रभुका सूत्र है—'**ये यथा मां प्रपद्यन्ते**' इसपर सभी कुछ-न-कुछ कहते हैं। मैंने इसपर कुछ विस्तार किया है; परन्तु वास्तवमें है उतना तो मनमें नहीं आ सकता। जितना मनमें आता है उतना वाणीमें नहीं आ पाता, वाणीमें आता है उतना समझा भी नहीं सकता। स्वामीको सुख पहुँचाना आनन्दमय ही है। जिस क्रियासे स्वामी सन्तुष्ट हों वही काम करता है। भक्तकी क्रियासे प्रभु आह्लादित हो जाते हैं। प्रभुके आनन्दसे भक्तोंको आनन्द होता है।

माँ सीता विलाप करती हैं इसलिये भगवान् राम रोते हैं। अपने प्यारे प्रेमी भक्तोंको प्रफुल्लित करनेके लिये प्रभु प्रफुल्लित होते हैं। प्रेममें भी यही स्थिति होती है, प्रेमी और प्रेमास्पद दोनों प्रेममय हो जाते हैं। प्रेम ही उन दोनोंका स्वरूप हो जाता है। एक हुए ही दो-से दीखते हैं। भगवान् भक्तके जीवन हैं, प्राण हैं, प्रेम हैं, धन हैं, शान्ति हैं, सर्वस्व हैं। इसी प्रकार भक्त भगवान्‌के लिये है। भगवान् मरें तो भक्त मरे। वहाँ तो एकता हो जाती है। शब्दोंको लिखना कठिन है, यदि शब्द लिखे भी

जायँ तो मेरा हाव-भाव कैसे लिखा जा सकता है, यह अनुभवगम्य है। जिसको प्राप्त होता है वही जानता है। गीतारूपी सागरकी एक बूँद भी मैं नहीं जानता। भगवान् कहते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

(गीता ४। ११)

हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ; क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं। दोनों बात बराबर रखते हैं।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥ (गीता ९। २९)

जो भक्त मेरेको प्रेमसे भजते हैं वे मेरेमें और मैं उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ। जैसे सूक्ष्मरूपसे प्रकट हुआ भी अग्नि साधनोंद्वारा प्रकट करनेसे ही प्रत्यक्ष होता है, वैसे ही सब जगह स्थित हुआ भी परमेश्वर भक्तिसे भजनेवालेके लिये ही अन्तःकरणमें प्रत्यक्षरूपसे प्रकट होता है।

जैसे मेरा वियोग, मेरे नाम, रूपका विस्मरण किसी प्रकारका वियोग उसके लिये मृत्युके समान है, वैसे ही मेरे लिये भी भक्तका वियोग-विस्मरण मृत्युके समान है। यद्यपि भगवान्‌की और भक्तकी मृत्यु कभी होनेवाली नहीं; क्योंकि यह वियोग होता ही नहीं है। दर्पणमें सूर्यका प्रतिबिम्ब पड़ता है, किन्तु भगवान् तो साक्षात् उसके हृदयमें स्थित होते हैं।

❑❑

श्रद्धानुसार लाभ

जिस क्रियामें स्वार्थ और अहंकार नहीं है, उससे लाभ होता ही है। भगवान्‌के अवतार, जीवन्मुक्त ज्ञानी महात्माओंकी क्रियामें ये दोष नहीं हैं। उनकी क्रियामें धर्म, ज्ञान, प्रेमकी शिक्षा जो लेना चाहता है वही मिलती है। जो लोग इस जन्ममें उच्च श्रेणीमें पैदा हुए हैं उनकी अपेक्षा कारक विशेष है। यों तो सब एक ही हैं उनकी प्रत्येक लीलामें ये सब बातें कोई प्रकट और कोई अप्रकट रहती हैं। उदाहरणके लिये भगवान् श्रीकृष्णकी कोई भी ऐसी लीलाको जो लोकदृष्टिमें कुत्सित-सी प्रतीत होती है, जैसे चीरहरण लीला, इसमें धर्मका उपदेश, नीति, प्रेम सभी कुछ है। जलमें नग्न होकर स्नान नहीं करना चाहिये। यह निषिद्ध है, यह धर्मका उपदेश है। वरुण जलका राजा है। इस अधर्मका दण्ड स्त्रीके लिये सबसे बढ़कर लज्जाभंग है, यह नीतिकी बात है। तीसरी बात प्रेमकी है—जब मेरे लिये ही कात्यायनीका व्रत करती हो, मुझे ही पति बनाना चाहती हो तो मुझसे कोई लज्जा नहीं होनी चाहिये। तीनों ही बातें हैं। शरत्पूर्णिमाकी रात्रिमें गोपियाँ पति-पुत्रोंको त्यागकर रासके लिये जाती हैं। भगवान् जाते ही धर्मका उपदेश देते हैं—रात्रिके समय पति-पुत्रको त्यागना अपना धर्म नहीं है। गोपियाँ भगवान्‌का परमपति ईश्वर होना स्वीकार करती हैं। नीतिका बर्ताव करते हैं, वापस लौटनेकी सलाह देते हैं। फिर खूब प्रेमका बर्ताव रास-नृत्य आदि होता है जिसमें धर्म-नीति सभी हैं।

ऐसे ही महात्मा पुरुषकी प्रत्येक क्रियामें श्रद्धा, ज्ञान, भक्ति,

---

प्रवचन-तिथि—कार्तिक शुक्ल १४, संवत् १९९४, (दिनांक १७-११-१९३७), प्रातः, गोरखपुर।

नीति रहती है। जो उनमें श्रद्धा रखता है उसे प्राप्त होती है, दीखती है। दोष दृष्टिवालेको नहीं दीखती। पतिव्रता स्त्रीको पतिकी चेष्टासे ही उसकी सारी क्रियाका ज्ञान हो जाता है। सेवकको मालिकके हाव-भावसे ही पता लग जाता है। इसी प्रकार महात्मा पुरुषके भक्त उनकी सारी क्रियाओंमें शिक्षा—उपदेश सब समय प्राप्त करते रहते हैं। उपदेश लेनेवालेपर ही निर्भर रहता है, देनेवालेके अधिकारकी बात नहीं है। हम जड़ वस्तुसे भी उपदेश ले सकते हैं, वृक्ष, पृथ्वी, सबसे ले सकते हैं। हमारी चादरको थोड़ी देरके लिये महात्मा मान लें, यह चादर हमको वैराग्य, ज्ञान, भक्ति, नीति, धर्म सबका उपदेश दे रही है। मौन होकर ही दे रही है। ऐसे ही अपने शरीरकी उपयोगिताको देखो। कुत्तेको, वृक्षको देखकर उसकी उपयोगिताकी तरफ ध्यान जाता है, उसी प्रकार मनुष्य-शरीरको तुम लोकलाभमें लगाओ, अगर हिंसा, अनीतिमें लगाते हो तो ठीक नहीं है।

चादरके द्वारा वैराग्यका उपदेश—यह चद्दर दिन-दिन क्षय होती जा रही है। इसी प्रकार तुम्हारा चोला (शरीर) भी क्षय होता जा रहा है। तुम्हारी बहुत-सी आयु चली गयी है, तुम्हारे शरीरको भी लोग फेंक देंगे, जला देंगे। अपने स्वामीको सब कुछ अर्पण कर रखा है। निजकी कोई चेष्टा नहीं है। बिलकुल अपने मालिकके अधीन है। अपना कोई भी एतराज नहीं है। मालिकके विधान सुख या दुःख सबको सहती है।

योगका उपदेश—चित्तवृत्ति-निरोध, मेरी तरहसे, जड़की तरह क्रिया-रहित, स्थिर हो जाना, ऐसे निर्वात स्थान दीपक शिखरकी तरह अपनी चित्तवृत्तिको बनाओ।

ज्ञानका उपदेश—**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।** असत् वस्तुकी तो सत्ता नहीं है और सत्का अभाव नहीं है।

मेरा नाम, रूप कायम नहीं है, ऐसी ही दशा तुम्हारे शरीरकी है। जब चद्दर इतना उपदेश देती है तब महात्मासे मिले इसमें तो आश्चर्य ही क्या है? लेनेवाला चाहिये अन्यथा साक्षात् भगवान् भी क्या कर सकते हैं। भगवान्ने दुर्योधनकी सभामें बहुत उपदेश दिया, प्रभाव भी दिखाया, किन्तु उलटा वे लोग बाँधनेके लिये तैयार हो गये। ईश्वरसे बढ़कर कोई नहीं, जड़से कोई नीचा नहीं, दोनोंके उदाहरण दिये, हम हरेक वृक्ष, मकान सबसे उपदेश ले सकते हैं फिर महात्माकी तो बात ही क्या है? यह तो सामान्य बात है। हम ईश्वरकी भक्ति करें और उसके प्रतापसे वे प्रकट हो जायँ, उस समय कितना आनन्द होता है उसका पता तभी लगता है, जब वे प्राप्त हों या किसीको प्राप्त होते दिखायी दें। रोमांच, गद्‌गद वाणी, प्रफुल्लित हृदय, अश्रुपात, अद्‌भुत आनन्दमयी दशा हो जाती है। इसमें हेतु श्रद्धा और प्रेम है। इसी प्रकार महात्मा पुरुषोंमें जिनकी श्रद्धा और प्रेम होता है, जिसपर उनकी दया हो जाती है, वह सोचता है कि कहाँ मेरे आचरण, कहाँ इनकी अहैतुकी दया। इस प्रकार जता रहे हैं, यह इनकी ही कृपा है। वह देखकर मुग्ध होता रहता है। उनकी सारी क्रियाओंमें अद्‌भुत प्रेम, आनन्द-ही-आनन्द प्रतीत होता है। महाराज कृष्णचन्द्रजी वनमें खड़े वंशी बजा रहे हैं, उनके बाँकेपनमें अद्‌भुत प्रेम झलक रहा है। चरण बाँके, कमर बाँकी, हाथ बाँके, गर्दन बाँकी, नेत्र बाँके, मुकुट बाँका, शब्द बाँके, वंशी बाँकी—सबको देखकर गोपियाँ मुग्ध हो जाती हैं। अष्टावक्रके बाँकेपनको देखकर तो जनककी सभामें लोग हँसे। आठ स्थानोंमें अष्टावक्र बाँके थे, भगवान् श्रीकृष्ण भी बाँके हैं, लेकिन अष्टावक्रको देखकर लोग हँसे। उनको हँसते देखकर अष्टावक्रने कहा—यहाँ तो चमार-ही-चमार बैठे हैं, मैं तो यहाँ

विद्वानोंकी सभा समझकर आया था, जो मेरी विद्या, बुद्धि, ज्ञानकी परीक्षा करते। यही बाँकापन वहाँ हँसीकी बात थी, भगवान्‌में श्रद्धा और प्रेमके कारण आनन्ददायक है। अश्रद्धासे सुननेसे दूसरी बात होती है। एक कहानी याद आ गयी—शायद कल्पित हो या सच्ची हो। एक समय नारदजी भगवान् कृष्णके पास गये कि आप पाण्डवोंका हित और दुर्योधनका अहित करते हैं। आप तो समदर्शी हैं। भगवान् बोले—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

(गीता ४। ११)

जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ; क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं।

पाण्डव साधु-धर्मात्मा भक्त हैं इसलिये मुझसे ऐसा लाभ उठाते हैं। कौरव दूसरी तरहका लाभ उठाते हैं। नारदजीने कहा—परीक्षा लेना चाहता हूँ। कोई अद्‌भुत काम करें। भगवान्‌ने एक सूई और हाथी मँगाया और कहा कि सूईमेंसे हाथी निकालना है। नारदजी दुर्योधनकी सभामें गये और दुर्योधनसे कहा—भगवान् श्रीकृष्ण एक अद्‌भुत काम करनेवाले हैं। दुर्योधन बोला—यह अंध श्रद्धा है, पागलपन है। आप फिर भी उनको भगवान् मानते रहेंगे इत्यादि। पाण्डवोंके यहाँ नारदजी गये। पाण्डवोंने पूछा—कभी हमारा भी स्मरण करते हैं। नारदजी बोले सूईमेंसे हाथी निकालना चाहते हैं। कैसे आश्चर्यकी बात है। पाण्डव बोले, वे तो त्रिलोकीको निकाल सकते हैं, वे तो असम्भवको भी सम्भव कर सकते हैं। आपको इसमें क्या आश्चर्य लगता है। नारदजी भगवान्‌के पास गये और बोले आप

तो समदृष्टि ही हैं। तात्पर्य यही है कि उपदेश लेनेवालेपर ही निर्भर करता है, देनेवालेपर नहीं। उपदेश लेनेवालेके लिये हर समय सत्संग है।

प्रश्न—जो खामी आती है वह श्रद्धाकी ही कमी है। श्रद्धा होनी ही कठिन है। उस दृष्टिसे देखना ही कठिन है।

उत्तर—भगवान् गीतामें कहते हैं—आत्माका आत्मा ही बन्धु है, आत्मा ही शत्रु है। आप ही अपने पतनमें हेतु हैं। आप ही अपने उद्धारमें हेतु हैं। मनुष्य स्वाभाविक अवगुणकी तरफ खयाल करता है। इसलिये अवगुण भर जाते हैं। समझदार पुरुषको उचित है कि वह गुणोंको ही देखे—

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक॥

इसके कई अर्थ होते हैं। ज्ञानमार्गसे एकत्व है। भक्तिमार्गमें दूसरा है। किसीकी तरफ दृष्टि जाय तो गुण ही देखना चाहिये, अवगुणकी तरफ देखना ही मूर्खता है। संसारमें सारे पदार्थोंमें परमाणुओंका आदान-प्रदान होता है। जैसा करोगे संग वैसा लगेगा रंग। कभी खाली नहीं बच सकोगे। सूक्ष्म पदार्थके सूक्ष्म और स्थूलके परमाणु स्थूल होते हैं। शरीरमें गंध आती है, मनमें नहीं। अवगुणी पुरुषके पास जिसमें दुराचार, दुर्गुण भरे पड़े हैं; हम जाते हैं तो हमारे हृदयमें उसकी छाप पड़ जाती है। व्यभिचारीकी बात हम सुनते हैं कि उसने उस लड़कीसे बुरा व्यवहार किया, सुननेसे हमारे मनमें उस लड़कीका और बुरे आदमीकी क्रियाका खयाल आता है उससे हानि होती है। किसी-किसीके मनमें मानसिक बुराई, कामदीपन हो जाता है। उस आदमीपर द्वेष-घृणा होती है। हमारा मन दूषित हो जाता है, प्रत्यक्ष नुकसान हो जाता है। कुसंग हो गया। इसीलिये कहा

जाता है कि इससे बचें। एक मनुष्य ध्यानमें मस्त है। उसकी मुद्राको देखकर हमारे मनमें आया कि अच्छा काम करता है। कभी हम भी ऐसा ध्यान करें। यह भाव कभी हमें ध्यान करानेवाला होगा। जो हमेशा महात्माओंके संग रहता है, वह महात्मा बन जाता है। दुराचार और दुर्गुण जिसमें हों, हमें उसकी चर्चा ही नहीं करनी चाहिये। जैसे वातावरणमें मनुष्य रहता है वैसा ही बन जाता है। हिन्दुस्तानी बच्चेको अंग्रेजोंमें छोड़ दें तो वह छोटी उम्रसे ही अंग्रेजी बोलने लगेगा। वातावरणका प्रभाव है। बुरा वातावरण सामने आ जाय तो उसकी उपेक्षा करनी चाहिये। जैसे रास्तेमें मैला आ जाय तो उसकी उपेक्षा करते हैं—

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणाम्। (पातंजलयोगप्रदीप)

महात्माओंको देखकर मुदिता, दुःखियोंपर करुणा, पापी नीचोंकी उपेक्षा इस प्रकार करनेसे चित्त शुद्ध होता है। भगवान् कहते हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥

(गीता १२। १३)

सब भूतोंपर प्रेम, दया करना, अपनेमें ममता, अहंकारका त्याग करना, सुख-दुःखमें समान रहना, अपराध करनेवालेपर क्षमा यह सिद्धके लक्षण हैं। महर्षि पतंजलिने साधककी बात बतायी है। महात्मा तो कंचनके समान हैं। उनको तो आँच आती ही नहीं। ज्ञानी महात्मा तो अग्निस्वरूप हैं। उनपर परमाणुओंका क्या असर होगा। अग्नि और घासका दृष्टान्त। अग्नि तो घास होगा नहीं, चाहे अग्नि घासमें पड़े, चाहे घास अग्निमें। पापियोंके परमाणुओंमें यह शक्ति नहीं है कि महात्माओंके परमाणुओंपर

असर डालें। दीपकके परमाणु ही अन्धकारका नाश करते हैं। कच्चे बर्तनोंपर वर्षा, धूपका असर होता है। पक्के घड़ोंपर न धूप न अग्निका असर होगा। वह कभी मिट्टी बनकर नहीं बहेगा। साधक कच्चे घड़ेके समान है। उसको बचना चाहिये। मन-वाणीसे किसी चीजकी आलोचना करना उसका संग ही है। अतः उत्तमका ही संग करना चाहिये। कोई पुरुष दुःखीकी सेवा, कोई उपदेश और कोई गुफामें ध्यान करता है। तीनों ही संसारका उपकार करते हैं। तीनोंमें शारीरिक सेवा करनेवालेकी अपेक्षा दोनों श्रेष्ठ हैं। एक वाणीसे उपदेश देता है, दूसरा क्रियासे मौन होकर उपदेश देता है। मानसिक क्रिया, मनसे ध्यान करनेवाला वातावरण इतना शुद्ध करता है कि कोई भी वहाँ जाकर बैठे तो उनका ध्यान लग जाता है। उसका दर्शन करने जो लोग जाते हैं, उनके मनमें आता है कि हम भी ऐसे ही बनें। उनकी बातें सुननेवालोंपर भी वही असर होता है। उनके मर जानेपर भी वह स्थान इतना पवित्र हो जाता है जो सदा ही दूसरोंकी सहायता करता रहता है। एक ज्ञानी महात्माके पास एक ज्ञानमार्गी जिज्ञासु गया और ब्रह्मज्ञानका उपदेश माँगने लगा। महात्माने उसे स्वीकार कर लिया। शिष्यने ब्रह्मका स्वरूप पूछा। महात्मा ध्यानमग्न हो गये, उठनेपर शिष्यने फिर पूछा तो महात्मा बोले बतला दिया। ब्रह्म क्रियारहित है। वाणीसे बतलाया नहीं जाता, वहाँ तूष्णी भाव है। अचिन्त्य होनेसे ही उसको जाना जा सकता है, इस प्रकार मौन होना भी उपदेश है।

महापुरुषद्वारा शारीरिक सेवा करानेवालोंको भी जब यह मालूम होता है कि सेवा करनेवाले महापुरुष हैं तो उनकी श्रद्धा बढ़ती जाती है। वे लोग भी खूब लाभ उठा सकते हैं। उनका शरीर ठीक हो जाता है तो वह उनके दास बन जाते हैं। उनको

याद करते हुए मर जाते हैं तो उनकी मुक्ति हो जाती है।

स्वार्थ और अहंकाररहित क्रिया बहुत ही उपकार करती है। अहंकार उत्तम क्रियाको दूषित बना देता है। जैसे कोई गंगाजलमें पेशाब कर दे तो वह अपवित्र हो जाता है। अहंकारका त्याग ही उत्तम फल देता है।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥ (गीता २। ४०)

बहुत-से आदमी कहते हैं कि हम स्वार्थ त्याग करके काम करते हैं फिर भी हमें लाभ नहीं होता। इसमें कोई कमी है जिसकी खोज करनी चाहिये।

मन्द श्रद्धाके लोग सत्संग तो करते हैं, उनकी जल्दी-से-जल्दी श्रद्धा बढ़ानेका उपाय श्रद्धालु पुरुषोंका संग है। श्रद्धाका प्रकरण कानोंसे सुनें। संग, बातचीत, श्रवण, चारों तरफ श्रद्धाका ही वातावरण जुटा लें। इसके विपरीत नास्तिकोंका श्रवण, पुस्तक पढ़ना, वातावरण आदिमें पड़नेसे तो साधककी श्रद्धामें कमी आ जाती है। किसी भी इन्द्रियसे, किसी कालमें, कभी भी श्रद्धाकी कमीकी बातें न सुनें, न पढ़ें। यह श्रद्धा बढ़ानेका उपाय है। जैसे-जैसे श्रद्धा बढ़ती जाती है वैसे ही प्रसन्नता, आनन्द, धीरता, वीरता, निर्भीकता प्रत्यक्ष होती जाती है। ईश्वरकी दया प्रतीत नहीं होनेपर भी मान लेनेसे प्रत्यक्ष प्रकट हो जाती है। दूध शनैः-शनैः दही हो जाता है। इसी प्रकार वह भी दूसरी सृष्टिमें चला जाता है। अनिच्छा-परेच्छा, प्राप्त वस्तुओंमें प्रिय-अप्रिय, अनुकूल-प्रतिकूलमें राग-द्वेष कम होते जाते हैं। सभी जगह प्रभु दीखते हैं। संसारके स्थानपर पद-पदपर भगवान् दीखने लगते हैं। आज हम कल्पना, भावना, श्रद्धा, विश्वास करते हैं। इनमें थोड़ा-थोड़ा अन्तर है। आरम्भमें थोड़ा विश्वास होता है कि ईश्वर हैं, तब कल्पना होती है, फिर श्रद्धा होती है, फिर पदार्थ

प्रत्यक्ष हो जाता है। भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग दोनोंमें यह बात बतायी जाती है। तुलसीदासजी कहते हैं—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

गोपियाँ सब जगह भगवान्‌को देखती हैं। भगवान् कहते हैं— '**यो मां पश्यति सर्वत्र**' सर्वत्र परमेश्वर दीखने लगते हैं। प्रथम परमेश्वरका अस्तित्वमात्र स्वीकार करता है। इतनामात्र प्रथम स्वीकार करना है। फिर सुनना है कि सब जगह हैं। फिर सुनता है कि सर्वज्ञ हैं। फिर आगे बढ़ता जाता है।

एक आदमी भक्ति, दूसरा भक्ति-ज्ञान-मिश्रण, तीसरा ज्ञानप्रधान चलता है। जैसे मकानकी सारी दीवालें, जमीन तथा छत भी शीशेकी हो, हम जिस तरफ देखें हमारा प्रतिबिम्ब दीखे—अपने स्थानपर तो स्वयं हैं ही सारे संसारको दर्पण बना लो। जहाँ दृष्टि जाय वहाँ परमात्माको देखें। जो अपने इष्ट हों, उनका स्वरूप सब जगह देखनेका अभ्यास करें। यह आरम्भ है। जैसे-जैसे अन्तःकरण शुद्ध होता जाता है, श्रद्धाकी वृद्धि होने लगेगी।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

(गीता १७। ३)

हे भारत! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है वह स्वयं भी वही है।

आगे जाकर उसको भगवान्‌का आभास-सा होने लग जाता है। कभी दीखते हैं, कभी नहीं दीखते और आगे जाकर पहले तो भावनासे और फिर मनसे भगवान् प्रत्यक्ष हो जाते हैं। प्रथम विवेक-बुद्धिसे, फिर मनसे और इसके बाद नेत्रोंसे प्रत्यक्ष होते हैं। उलटी चाल है। शुरूमें आत्मासे, प्रत्यक्षता चलती है, फिर

मनसे, फिर नेत्रोंसे। पहले विवेकसे स्वीकार करता है। आत्मासे सत्तामात्रको स्वीकार करता है, फिर बुद्धिमें निश्चय करके खोजमें चलता है। जैसे-जैसे पापोंका नाश होता है, भगवान् बुद्धिमें एकदम प्रत्यक्ष दीखने लगते हैं। उदाहरण—पूर्व सूर्योदयकी तरफ ही है। बुद्धिसे निश्चय है। चौंधमें हमें पश्चिमकी ओर, किसीको उत्तरकी ओर दीखता है, परन्तु बुद्धिसे निश्चय होता है कि जिस तरफ सूर्योदय हुआ है वही पूर्व है। रेलमें भी कभी-कभी भ्रम होता है मानो सूर्य पश्चिममें उदय हुआ है। असली स्थानपर पहुँचनेपर तो मनका भ्रम भी मिट जाता है। प्रथम बुद्धिमें निश्चय होता है, मनके भ्रमको हम दीखते हुए भी नहीं मानते। ऐसे ही पहले बुद्धिसे प्रत्यक्ष भगवान् सर्वत्र दीखने लगते हैं। आगे जाकर मनकी दृष्टिसे भी प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

इस समय हमको दिग्भ्रम नहीं है बुद्धिसे निश्चय है, मनमें उसी प्रकार प्रत्यक्ष प्रभु विराजमान हैं। नेत्रोंसे दीखना बाकी है। जैसे बलदेवजीने ध्यानावस्थामें देखा कि सब कृष्ण ही हैं। यह बुद्धिका निश्चय है। फिर कृष्णजीसे मिले, उन्होंने सब हाल कह दिया। अब मन और बुद्धिसे प्रत्यक्ष दीखते हैं। नेत्रोंसे नहीं दीखते हैं। प्रह्लादको मन और बुद्धिसे सब जगह भगवान् दीखते हैं। हिरण्यकशिपुने पूछा खम्भमें है—हाँ हैं। उसके समझमें नहीं आता कि भगवान् खम्भमें कैसे हैं। थोड़ी देरमें शब्द हुआ तो कानोंसे सुनने लगे, बाहर आ गये तो प्रत्यक्ष हो गये। प्रथम नारदजीके उपदेशसे बुद्धिमें, फिर मनमें प्रत्यक्ष हो गये। तभी तो आग नहीं जलाती, प्रत्यक्ष दीखते हैं। सुधन्वाको कड़ाहेमें प्रत्यक्ष मनसे, बुद्धिसे दीखते हैं। रणभूमिमें नेत्रोंसे भी प्रत्यक्ष हो गये। भगवान् कहते हैं अनन्य भक्तिसे, बुद्धिसे जानना, मनसे प्राप्त करना और नेत्रोंसे दर्शन होता है। भक्तिसे सब कुछ हो जाता है।

❑ ❑

श्रद्धाका क्रम

कलियुगमें जैसा कुछ होना चाहिये उससे अधिक नीचा समय होनेपर भगवान् अवतार लेते हैं। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर युगोंके विषयमें भी यही बात है। भारी अत्याचार हुए हैं। त्रेतामें रामायण देखनेसे मालूम होता है। अत्याचारी लोग ऋषियोंको मारकर खा जाते, हड्डियोंका ढेर लग गया। भगवान्ने यह देखा और यह घोषणा की ***'निसिचर हीन करउँ महि'*** इस समय ऐसी बात नहीं देखी जाती है कि बलात् मनुष्योंको मारकर खा जायँ। पशुओंपर, गौओंपर तो अत्याचार हो रहा है। त्रेतायुगमें जब कलियुगसे भी अधिक अत्याचार बढ़ गये तब भगवान्ने अवतार लिया। द्वापरमें भी कंसने अपने माता-पिताका राज्य छीनकर कैद कर लिया था। बहिनके लड़कोंको मार डाला। द्वापरमें कलियुगसे भी गया-बीता समय आया तब भगवान्ने अवतार लिया। वर्तमानमें ऐसी बात नहीं प्रतीत होती।

प्रश्न—स्वाभाविक गिरना क्या है?

उत्तर—जलका स्वभाव नीचे गिरना है, प्रकृति जड़ है, प्रकृतिसे सम्बन्ध होनेसे जीव स्वाभाविक ही नीचे गिरते चले जाते हैं। ऊपर उठना ईश्वरकी कृपासे, महापुरुषोंकी कृपासे होता है। आकाशसे जल पहाड़ोंपर, खेतोंमें, नदियोंमें ऐसे समुद्रमें जाता है। उठता है तब सीधे ही समुद्रसे सूर्यभगवान् उठा लेते हैं। इसी प्रकार युगोंका हाल है। सत्ययुगसे गिरते-गिरते लोग कलियुगमें आते हैं। फिर भगवान् अवतार लेकर ऊँचा उठा देते हैं। जलके चक्करकी तरह ही जीवोंका चक्कर है। हमको तो अपनी कमी समझकर उत्थानके लिये कोशिश करनी चाहिये। वातावरणसे तो स्वाभाविक ही गिरता है, परन्तु प्रयत्नशील लोग ऊँचे उठ सकते हैं। उनपर युगका असर नहीं होता। इसीलिये साधु महात्मा सदाचार, भक्तिके प्रचारकी कोशिश करते हैं। ऐसे

प्रवचन-तिथि—कार्तिक शुक्ल १४, संवत् १९९४ (दिनांक १७-११-१९३७), दोपहर २ से ४ बजे।

समय धर्म माननेवाले लोग कम रह जाते हैं। कानून ढीला पड़ जाता है। थोड़े ही साधनमें उद्धार हो जाता है।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥

(गीता १३। २१)

प्रकृतिमें स्थित ही पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थोंको भोगता है और इन गुणोंका संग ही इस जीवात्माके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका कारण है।

चैतन्य जड़के वशमें हो रहा है,यह इसकी मूर्खता है। इसीके लिये उपदेश है। भगवान् कहते हैं—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

(गीता ६। ५)

अपने द्वारा अपना संसार-समुद्रसे उद्धार करे और अपनेको अधोगतिमें न डाले, क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।

श्रुति भी कहती है—'**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।**' सोये सिंहको तो कमजोर भी आकर मार डालता है। जाग्रत् होकर दहाड़ता है तो पचासों आदमी भी नहीं ठहर सकते हैं। भूलके अधीन ही चैतन्य जड़के वशमें हो रहा है। भूल मिटानेके लिये ही उपदेश है। सभी प्रकारका अज्ञान प्रयत्नसे मिट जाता है। मनुष्यमें जन्मसिद्ध स्वाभाविक ही संस्कृत, अंग्रेजीका अज्ञान है, प्रयत्नसे विद्या पढ़नेसे भूल मिट जाती है। ऐसे ही आत्मविषयक भूल भी प्रयत्नसे मिट जाती है। लौकिक विद्याको पढ़कर मनुष्य भूल भी जाता है, किन्तु वह इतने ऊँचे दर्जेका ज्ञान है कि प्राप्त होनेपर नहीं भूलता। यह उसकी विशेषता है। मेरी कोई बात अनुचित हो, अनर्गल हो, शास्त्रविरुद्ध हो तो बतानी चाहिये। मैं तो बालक हूँ, जो कुछ मनमें आता है कह

देता हूँ। मैं सर्वज्ञ हूँ या निर्भ्रान्त हूँ ऐसा मैं नहीं कहता। ईश्वरके भूल होती ही नहीं। सर्वज्ञ योगी जो योगबलसे यथार्थ जान लेते हैं उनकी भी भूल नहीं होती। कारक पुरुषोंकी भी नहीं होती।

प्रश्न—जो त्रिगुणातीत होते हैं क्या उनको भी रजोगुण, सत्त्वगुण होते हैं?

उत्तर—आपका प्रश्न वैसे ही अयुक्त है जैसे कोई पूछे कि मुखमें जीभ है या नहीं। इसी प्रकार राजस-तामसको भी समझना चाहिये। जिस पुरुषको ज्ञानप्राप्ति होती है उस ज्ञानीके शरीरमें कोई धर्मी नहीं रहनेसे उसका बर्ताव सात्त्विक ही होता है। निद्रा, स्वप्न आदि अवस्थामें तम अवस्था तो रहती है, परन्तु प्रमाद नहीं रहता। प्रवृत्ति—यह रजोगुण है। ज्ञानीमें लोभ, तृष्णा, काम नहीं रहते, किन्तु प्रवृत्ति रहती है। काम, क्रोध, लोभ इनके लिये धर्मीकी आवश्यकता है। वहाँ कोई धर्मी नहीं है। तब ये किसके आधारपर रहें। अवस्थाके लिये धर्मीकी आवश्यकता नहीं। क्रिया बिना धर्मीके भी हो सकती है। राजसी, तामसी भाव जो धर्मीमें होनेवाले हैं, वे ज्ञानीमें नहीं होते। उसके शरीरके लिये कुम्हारके चाकका उदाहरण दिया गया है। बिना कुम्हारके भी चाक तबतक चलता है जबतक उसमें वेग रहता है। इंजनका उदाहरण उससे भी बढ़कर है। बिना ड्राईवरके भी इंजन चल रहा है। ड्राईवर कूद गया है। विशेषज्ञ लोग कुछ समझ लेते हैं। इंजनमें केवल पाँच प्रकृति हैं—भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश, जीवन्मुक्तमें तीन अधिक हैं—मन, बुद्धि और अहंकार। इससे सब काम ठीक होता रहता है। ड्राईवर जबतक रहता है तबतक तो कभी राजस, कभी तामस, कभी सात्त्विक इन लाइनोंपर गाड़ी चलती-बदलती रहती है। जब वह कूदता है तब सात्त्विक लाइनपर करके छोड़ता है और उसीपर गाड़ी चलती रहती है।

न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति॥ (गीता १४। २२)

अनुकूलता-प्रतिकूलता, राग-द्वेष नहीं होते तब समझ लेना

चाहिये कि जीवन्मुक्त है, कोई धर्मी नहीं है। अगर धर्मी होगा तो हर्ष-शोक, राग-द्वेष होंगे। स्वसंवेद्य अवस्था है। अपने-आपके समझनेके लिये यह सब वर्णन है। दूसरा नहीं जानता।

प्रश्न—सब दलीलें बन्द करके अपने कल्याणके लिये चेष्टा करनी चाहिये। जहाँतक मार्गमें प्रवृत्त न हो, जाननेसे क्या लाभ है?

उत्तर—व्यंजनोंमें फिरनेवाली कड़छीके समान है।

प्रश्न—भक्तमें श्रद्धाका क्या अनुक्रम है? भक्तिमार्गमें तो भक्तको जानना भी आवश्यक ही है। दोनोंका ही बराबर दर्जा है। भक्त, भगवान्, महात्माको भी समझना चाहिये, उनपर भी श्रद्धा होनी चाहिये। इसका क्या क्रम है। उनकी कृपा कैसे प्रत्यक्ष मालूम होने लगती है?

उत्तर—महात्माओंकी स्थितिका तत्त्व किसी अंशमें बतलाया गया, यह महात्माके तत्त्वकी बात है। ऐसे ही उनके रहस्य, प्रभाव, गुणकी बात पढ़ने, सुननेसे उनमें श्रद्धा होती है। अपने सम्मुख ऐसा ही वातावरण रहे कि महात्माओंका जीवन-चरित्र पढ़ें, उनकी ही बातें करें, उनमें श्रद्धा रखनेवालोंका संग करते रहें। इसके विपरीतकी उपेक्षा करें। श्रद्धा घटे ऐसे किसी काममें शामिल न रहें। इतना दूर रहें जितना प्लेग, मौत, आगसे दूर रहते हैं। इस प्रकारके वातावरणसे वह महात्माओंका श्रद्धालु होकर आगे जाकर महात्मा हो जाता है।

प्रश्न—प्रश्न श्रद्धाके क्रमके विषयमें है। महात्माको समझना महात्माकी कृपासे ही होता है।

उत्तर—यह थोड़ी विचित्र ढंगकी बात है। ईश्वर और महात्माके विषयमें परस्पर विलक्षण है। ईश्वरमें अवगुण, दुराचार, प्रभावकी कमी, सामर्थ्यकी कमी, श्रद्धामें अश्रद्धा आदिकी सम्भावना नहीं होती। महात्माकी भी यही बात है; परन्तु यह महात्मा है यह पहचाननेमें बड़ी कठिनता है। संसारमें गड़बड़ी इसीलिये होती है। व्यक्तिविशेषको महात्मा समझना बड़ी कठिन बात है।

यह बात तो जँच जाती है कि संसारमें महात्मा हैं, परन्तु अमुक मनुष्य महात्मा है या नहीं इस विषयमें शंका है। आरम्भमें शंकायुक्त महात्मापनेका विश्वास होता है। कहीं-कहींपर बुद्धि निश्चय कर लेती है कि यही महात्मा है, परन्तु मन जब उनकी क्रियाओंमें विपरीतता देखता है तब बुद्धिको मन विचलित करता है। विपरीत मालूम होनेपर बुद्धिको समझा दें कि मेरे ही निर्णयमें कमी है। मैं अभी इनको पूरा नहीं समझता।

यह श्रद्धा बढ़ानेवाली बात है। मैं तो ईश्वरके लिये इनको महात्मा मानकर चलता हूँ, अपनेपर बोझा क्यों उठाऊँ। भगवान् कहते हैं—'**योगक्षेमं वहाम्यहम्**' हम तो ईश्वरके लिये ही यह चेष्टा कर रहे हैं। हम क्यों चिन्ता करें। महात्मापर अविश्वास करना ईश्वरपर ही अविश्वास करना है। यदि ईश्वर हैं तो स्वयं ही उसको रास्तेपर लायेंगे। जिस ईश्वरके लिये तुम आगे बढ़ रहे हो, वह अपने-आप तुमको बचायेगा। वह सर्वशक्तिमान् है। असम्भवको सम्भव बनानेवाला है। अगर वह तुमको न बचाये तो वह अपने कर्तव्यसे गिरता है। इस प्रकारके संकल्प-विकल्प होनेके बाद बुद्धिका निश्चय बढ़ता जाता है। इसके बाद विकल्प नष्ट होते जाते हैं। उसकी श्रद्धा, प्रेम बढ़ते चले जाते हैं। जब मन कोई प्रकारकी बाधा नहीं दे सकता तब इन्द्रियाँ मनमें कुछ गड़बड़ी पैदा करना चाहती हैं। मन बुद्धिको टक्कर लगाता है। कानोंसे सुनता है कि जिसको तुम महात्मा मानते हो वह व्यभिचारी है। मनमें कुछ खलबली-सी उठती है। महात्माके मिलनेपर उनसे स्पष्ट पूछ सकता है कि इसका क्या हेतु है। आँखोंसे कोई क्रिया देखी, समझमें नहीं आयी, नेत्रोंसे तो दोष ही दीखता है; परन्तु श्रद्धाके जोरसे उसको गुण ही बना देते हैं। सरलतासे, विशेष श्रद्धासे पूछता है तो असली कारण महात्मा बता भी देते हैं। यदि पात्र नहीं देखते तो नहीं भी बताते हैं, मौन हो जाते हैं। यह भी कह सकते हैं कि मैं नहीं बताता। यह भी निश्चय है कि महात्मा झूठ नहीं कहते।

प्रश्नकर्ता—किसीके मनमें यह बात आये ही नहीं, ऐसी बात उठे ही नहीं, वह सुनना भी न चाहें।

उत्तर—इससे भी ऊँची बात है, उसकी प्रत्येक क्रियामें गुणबुद्धि हो जाती है।

प्रश्नकर्ता—बिना परिचय दिये गुणबुद्धि होनी कठिन है।

उत्तर—ऐसा मुहावरा डालते-डालते गुणबुद्धि हो जाती है। वह बिना देखे चलता है। चलनेसे चींटीपर पैर पड़ गया उसकी मृत्यु हो गयी। शास्त्रकी दृष्टिसे तो दोष है; परन्तु वह देखता है कि महात्माके स्पर्शसे मृत्यु हुई तो उसकी मुक्ति हो गयी, यह गुणबुद्धि है। किसीके यहाँ भोजन करते हैं तो वह देखता है कि इनपर कृपा करनेके लिये भोजन किया।

प्रश्नकर्ता—जहाँ महात्मा विकारोंका नाटक करते हैं वहाँ कठिनाई आ जाती है।

उत्तर—कहीं महात्माने अपनी बड़ाई की, दोषबुद्धिवाला तो दोषकी कल्पना करता है। गुणबुद्धिवाला देख सकता है कि इनकी विशेष कृपा हुई है। अपना प्रभाव बताते हैं। कलंकका टीका लेकर भी हमारा उद्धार करते हैं। गुणबुद्धि होनेपर हरेक क्रिया आनन्ददायक हो जाती है। अच्छे पुरुषोंका संग करके भी बहुत लोग लाभ नहीं उठा पाते। श्रद्धावाला ही लाभ उठा सकता है। महात्मालोग लोगोंको पास रहनेका विशेष मौका इसलिये नहीं देते हैं कि हमारी सारी क्रियाओंको यह समझ नहीं सकेगा, इसलिये कहीं उसको हानि न हो जाय। किसी-किसीको तो हटाना भी उसके गुण बढ़ानेके लिये होता है। किसीको रखना भी उसको हटानेके लिये होता है। उसको रहनेके लिये कहनेसे वह भाग जाता है। सभ्यताका व्यवहार करता है, रहनेके लिये कहनेसे वह कहता है कि फिर आऊँगा, फिर कभी रहूँगा। यह उसके भेजनेकी तरकीब है। जिसमें श्रद्धा बहुत है उसको भी हटानेका मौका देते हैं। भगवान् मथुरामें रहकर भी गोपियोंसे नहीं

मिलते थे। विरह-व्याकुलता भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। कोई स्पर्श, दर्शनसे कल्याणकी बात तो करते हैं; किन्तु इतनी श्रद्धा नहीं होती। जब वह वास्तवमें पात्र हो जाता है तो महात्मा छिप ही नहीं सकते। महात्मा तो मूर्ख है ही नहीं, साधकमें अज्ञान है।

प्रश्न—सच्चे दिलसे मदद चाहता है तो महात्मा मदद देते हैं या नहीं।

उत्तर—मदद तो देते हैं, परन्तु उसको इस बातकी परवाह ही नहीं रखनी चाहिये। वह अपनेपर यह भार ले ही नहीं। महात्मा पुरुष उसके विश्वासपर ही उसको सँभालते हैं। जो खुद सँभाल करने लगता है, वहाँ भगवान् हट जाते हैं। जितना महात्माके भरोसेपर रहता है उतनी उनको वैसी ही चिन्ता रहती है। जितना मान-सम्मान है उतनी तो प्रेमकी कमी आयी। जब शरण है, अर्पण है, तब यह कहनेका भी क्या अधिकार है कि यह करो, यह मत करो। ऊँचे दर्जेमें तो संकोच, भय, मान, अपमान सब चले जाते हैं। अत्यन्त मित्रताके नातेमें स्वप्नमें भी भय नहीं रहता। स्वामी उसका पैर भी पूजे तो ना नहीं करना चाहिये। अपनी ही चीजका उपयोग करते हैं। कपिलदेवका पैर उनके माता-पिता देवहूति-कर्दमजी पूजें तो वे क्या कहें। उनकी ही चीज है जो इच्छा हो करें। बहुत ऊँची श्रेणीमें पहुँचनेपर सब नीतिका व्यवहार छूट जाता है। अपने हाथसे कोई मान, अपमान, संकोच, लज्जा थोड़े ही करता है, हाथ सब गुप्त स्थानोंका भी स्पर्श करता है।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

(गीता ६। ३२)

हे अर्जुन! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतोंमें सम देखता है और सुख अथवा दुःखको भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।

❑ ❑

प्रेमका स्वरूप

हर एक भाईको समझना चाहिये कि काम और प्रेम दोनों अत्यन्त भिन्न हैं, परन्तु प्रेमके बराबर कोई चीज नहीं है। कामका सबको अनुभव है। घृणित चीज होनेपर भी उसके उदाहरणसे समझाया जाता है। ईश्वर और महात्माके साथ जो प्रेम है वह बहुत अद्भुत है। भगवान्‌का मूल्य प्रेम है, स्वरूप प्रेम है, विशुद्ध प्रेम है, वह लौकिक प्रेमके लक्ष्यसे समझाया जाता है। लौकिक प्रेमका नाम काम है। युवा सुन्दर स्त्रीका चिन्तन होनेसे मनुष्यमें कामदीपन हो जाता है। इसी प्रकार भगवान्, महात्मा पुरुषके चिन्तनमात्रसे रोम-रोममें प्रेम व्याप्त हो जाय तो समझना चाहिये कि ईश्वरकी विशेष कृपा है। प्रभुके नामको सुननेमात्रसे रोम-रोममें मुग्धता जाग्रत् हो जाय तो समझना चाहिये प्रेम है, इसी प्रकार महात्माकी बात है। स्त्रीकी यदि मुलाकात हो जाय तब तो काम मूर्तिमान् होकर व्याप्त हो जाता है। इसी प्रकार महापुरुषोंसे मिलनेपर विशुद्ध प्रेम जाग्रत् हो जाता है। उसका कोई ओर-छोर नहीं। भगवद्विषयक विशुद्ध प्रेममें कितना आनन्द होना चाहिये, इसका कोई अन्दाज नहीं लगा सकता। किसी-किसीको तो उस आमोद-प्रमोदमें इतनी मुग्धता हो जाती है कि मूर्च्छा-सी हो जाती है और प्रभुके प्रकट होनेपर बड़ी अद्भुत बात होती है। प्रत्यक्ष प्रभु प्रकट होते हैं, प्रभुके इस प्रेमको देखकर वह अपने-आपमें समा नहीं सकता कि कहाँ प्रभु, कहाँ मैं। महापुरुषसे भी करीब-करीब वैसी ही बात हो जाती है। दर्शनसे, बातचीतसे कितना आनन्द आता है उसे किन शब्दोंमें बतावें। उसकी प्रत्येक क्रिया प्रेम और आनन्दके श्रोतको बहानेवाली

प्रवचन-तिथि—कार्तिक शुक्ल १५, संवत् १९९४ (दिनांक १८-११-१९३७), प्रातः ७.३० बजे, गोरखपुर।

हो जाती है। उस प्यारे प्रेमीसे मिलनेमें कितना आनन्द है इसका कोई ठिकाना नहीं। वार्तालापमें कभी तो मुग्ध, बेहोश-सा हो जाता है, कभी अपनेको सँभाल लेता है। उस हालतमें न तो महापुरुष ही उससे छिप सकते हैं और न प्रभु ही छिप सकते हैं। उनकी दशा देखनेवाले दूसरे लोग भी मुग्ध हो जाते हैं। भरतजी रामजीसे मिलने जा रहे हैं, चरण-चिह्न देखकर भरतजीकी जो दशा हुई उसे देखकर गुह प्रेममें मूर्च्छित हो गये। प्रभुके मिलनेकी आशा हो गयी, चरण-चिह्न मिले, प्रभु पास ही हैं, जब प्रभु मिले तब तो बात ही क्या। ऐसे प्रेमियोंका मिलन, दर्शन बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है। हनुमान्‌जी भगवान्‌का सन्देश लेकर आते हैं कि प्रभु मिलने आ रहे हैं। उस समय भरतजी कहते हैं—

एहि संदेस सरिस जग माहीं । करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं ॥

भरतजी हनुमान्‌जीसे पूछते हैं—क्या कभी मेरी भी चर्चा होती है। यह प्रेम ईश्वर और महापुरुषोंके साथमें हो, प्रेमकी इतनी सामर्थ्य है कि प्रभु छिप ही कैसे सकते हैं। प्रभु जो अप्रकट हैं वे हमारी अपात्रताके कारण हमको पात्र बनानेके लिये अप्रकट हो जाते हैं। इस विलम्बमें हमारा परम हित है।

प्रेमका विषय बड़ा अद्‌भुत है। प्रेमकी बातें ऐसी हैं जहाँ हमलोगोंकी पहुँच नहीं। वे बातें लिखनेवाला लिख नहीं सकता। अगर वह प्रेम प्राप्त हो जाय तब तो लिखना-पढ़ना सब बन्द हो जाता है। वह अपने-आपको सँभाल ही नहीं सकता।

प्रेमके समान कोई वस्तु है ही नहीं। प्रभुसे दर्शनकी नहीं, प्रेमकी भिक्षा माँगनी चाहिये। प्रेम दे देंगे तो उनके रहनेके लिये और दूसरा स्थान ही नहीं है। उससे बढ़कर और स्थान कहाँ मिलेगा। प्रेमका जहाँ प्रकरण चलता है, वहाँ मानो भगवान् प्रत्यक्षरूपसे प्रकट होकर सुनते हैं। चाहते हैं कि कोई बुलावे तो मैं शामिल हो जाऊँ। वहाँ बुलाये कौन, तब भगवान् बिना बुलाये

जाते हैं। कहते हैं कि क्या मैं पात्र नहीं, मुझे शामिल करो। प्रेमी भक्त कहता है कि आप तो अन्तर्यामी हैं आपको अभीष्ट नहीं था। आप तो प्रेमका रहस्य हमसे अधिक जानते हैं। जब आप वियोग सहन कर सकते हैं तो हमारे लिये यह मामूली बात है। हमें ऐसा बन जाना चाहिये कि स्वयं भगवान् अधीर होकर न रुक सकें। हम बुलायें तो हमारे पक्षकी हार हो गयी। चाहे भगवान् न मिलें हम हार नहीं देखना चाहते। लौकिक स्त्री-पुरुषके प्रेममें स्त्री यदि समझती है कि स्वामी आसक्त है तो वह इच्छा नहीं जनाती, बल्कि टालमटोल करती है। इसी प्रकार भगवान् यदि मिलनेकी इच्छा करें तो हमें टालमटोल ही करनी चाहिये। वे रुक तो सकते ही नहीं, प्रेम ऐसी चीज है कि अपने बलिदानमें भी आपको आनन्द ही होगा। हँसते हुए शूलीपर चढ़ जायगा। रतन कँवरको शरीर चिराते कितना आनन्द हो रहा है। यह उदाहरण सामने है। यह हमलोगोंकी दृष्टिसे उच्च है, परन्तु इससे भी उच्चभाव हो सकता है, यह सीमा नहीं है। गोपियोंसे भी उच्चभाव हो सकता है। उस कालमें ऐसा कोई नहीं था, परन्तु हमलोग बन सकते हैं। जो यह मानता है कि नहीं बन सकते, वह प्रभुके स्वभावको ही नहीं जानता, प्रभुपर लांछन लगाता है। एक मच्छर ब्रह्मासे बढ़कर हो सकता है। इस प्रकार दयाके तत्त्वको जाननेवाला यह कब कह सकता है। विलम्बकी भी कल्पना नहीं करनी चाहिये। प्रभुमें विलम्ब कैसा? विलम्बका कारण क्या? वह स्वयं ही विलम्बका हेतु बन जाता है। उसीको मिलनेकी उत्कट इच्छा नहीं है। प्रभु इसके सामर्थ्यकी ओर तो देखते ही नहीं, केवल इच्छा ही देखते हैं। बच्चा माँसे मिलनेके लिये पुकारता है तो माँ उस रोनेकी आवाजसे यह देख लेती है कि विलम्ब चल सकता है या नहीं। जब नाभिसे आवाज मान लेती है तब रुक नहीं सकती। माँ उसके गुण, आचरण, मूत्र,

विष्ठा, किसी दोषकी ओर न देखकर तुरन्त साफ कर देती है। प्रभु भी केवल पुकार ही देखते हैं। केवल एक प्रेमकी पुकार—बस और कोई शर्त नहीं। लाख अवगुण, दुराचार सब एक क्षणमें मिटा देते हैं। एक क्षणमें पवित्र करके हृदयसे लगा लेते हैं। सारे पाप एक क्षणमें नष्ट हो जाते हैं।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

(मुण्डकोपनिषद् २। २। ८)

परावरस्वरूप परमात्माका साक्षात्कार हो जानेपर उसके हृदयकी ग्रन्थि खुल जाती है। सम्पूर्ण संशय नष्ट हो जाते हैं और समस्त कर्मोंका क्षय हो जाता है। प्रेमका जितना-जितना दर्जा समझता जाता है उतनी ही पुकार जोरदार होती जाती है। उस प्रेमकी वृद्धिके लिये मस्तकको हर समय हथेलीपर रखना चाहिये। समुद्रके समान प्रेमकी एक बूँदकी प्राप्तिके लिये मरना आनन्ददायक प्रतीत होता है। प्रभुकी विशेष दया मानता है। अपने अधिकारकी चीजोंके अर्पणकी तो बात ही नहीं, जब इस प्रेमकी छटाका आभासमात्र प्राप्त हो जाता है तब विषयासक्ति, लौकिक प्रेम तो सूख जाते हैं। जितना आप भगवत्प्रेमको अधिक आदर देंगे उतना ही उसके नजदीक पहुँचेंगे। करना-धरना कुछ भी नहीं है। आदर देना ही प्रभुके नजदीक पहुँचना है। ऐसे प्रेमीके दर्शनोंके लिये प्रभु लालायित रहते हैं। भागवतमें स्वयं भगवान् कहते हैं, उन प्रेमियोंकी रज पड़ जाय तो मैं पवित्र हो जाऊँ। यहाँ प्रेमकी बातें हुईं। यदि यहाँ गोपियोंका समुदाय बैठा हो तो वह मूर्च्छित हो जाय।

जैसे लोकमें एक कामी पुरुष जिसपर आसक्त होता है उस स्त्रीको देखनेसे उसमें एकतार रसका अनुभव करता है, नेत्रोंद्वारा रसका पान करता है। फिर उस असली प्यारे महापुरुषके दर्शनसे उसको जो प्रेमका रस आ रहा है वह कितना असंख्य गुना है।

उसकी जाति ही दूसरी है, उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होता है, यह प्रेम है। वह अन्धकार है, यह प्रकाश है। यहाँ नेत्रोंकी पलक भी असह्य हो जाती है। नेत्रोंकी पलकका पड़ना तलवार मारना, जान मारने जैसा लगता है।

गोपियाँ ब्रह्माजीको कोसती हैं कि पलकें क्यों बना दीं। महापुरुषोंके दर्शनसे, ईश्वरके दर्शनसे नेत्रोंद्वारा महान् अमृतका पान हो रहा है। स्पर्शमें हमलोग बिजलीका उदाहरण देते हैं; बिजली छूनेसे तो क्लेश होता है। दूसरा उदाहरण नहीं मिलनेके कारण ही शास्त्रकारोंने कामके उदाहरणसे समझाया है; किन्तु अन्धकार और प्रकाशका अन्तर है। लोगोंको कामका अनुभव होता है इसीलिये यह उदाहरण देते हैं। प्रेम तो अलौकिक वस्तु है। लौकिक प्रेममें छूरीसे काटा जाय तो भाग जाता है। वहाँ तो इससे खिलता है। रतन कँवरपर करोत (आरी) चलती है। उसका चेहरा प्रफुल्लित होता जाता है। उत्तरोत्तर नया रंग खिलता है। यह काममें नहीं होता। उन ईश्वरके स्मरण, गुण-प्रभावके श्रवण, मननसे जो आनन्द होता है उसकी सीमा नहीं, तब दर्शनसे, मिलनसे कितना आनन्द होगा इसका क्या ठिकाना है। वहाँ वस्त्र भी व्यवधान लगते हैं। स्त्री-पुरुषके मिलनेके बाद भी द्वैत रहता है; किन्तु प्रभुसे मिलनेपर एकता हो जाती है। स्त्री-पुरुषोंमें अपना-अपना स्वार्थ-आनन्द है। वहाँ इससे विपरीत है। दूसरेका आनन्द ही अपना आनन्द है, वह प्रेम है, वहाँ काम-स्वार्थ नहीं है। उस प्रेमीको तो प्रभुके आनन्दसे ही आनन्द है। प्रभु तो आनन्दमूर्ति हैं। उनमें जो विशेष आनन्दकी झलक है, वह भक्तके आनन्दसे ही है। पतिके प्रति इस प्रकार भाववाली स्त्री पतिव्रता है। इसी पातिव्रत्यसे उसकी मुक्ति होती है। इसी प्रकार माता-पिताकी सेवासे पुत्रका, गुरुकी सेवासे शिष्यका, स्वामीकी सेवासे सेवकका कल्याण हो जाता है। जो परमेश्वरके सच्चे भक्त हैं, जिन महापुरुषोंको

परमेश्वरके दर्शन हो गये, उनके दर्शन हो जायँ तो हम कृतकृत्य हैं। उन भक्तोंके दासोंका मिलन होनेपर भी हम कृतकृत्य हैं। प्रभुके दास हनुमान्‌जीसे मिलनेपर भरतजीकी क्या दशा हुई। आगे-आगे हनुमान् आये, पीछे-पीछे भगवान् आये, प्रभु तो पीछे-पीछे हैं। दास मिलते ही सगुन हुआ कि भगवान् आयेंगे। ईश्वर और महापुरुषोंमें प्रेम जितना गुप्त हो, उतनी ही उसकी दर ऊँची है। एक महापुरुषके दर्शनसे हमको बड़ा आनन्द आ रहा है, इस बातको कोई दूसरा जान गया तो हमारे लिये बड़ी लज्जाकी बात है। कन्या विवाहके पूर्व छिपकर वरको देखती हुई सहेलियोंसे छिपाती है। ऐसे ही महापुरुषोंको प्रणाम आदि क्रियाको दूसरे न जानें, हृदयका भाव ही ज्यादा कीमती है। जितना लोक-दृष्टिसे बचाये रहें उतना ही ज्यादा मूल्यवान् है। प्रेम होना चाहिये चाहे सखाभावसे हो, चाहे स्वामी-सेवकभावसे हो, चाहे दोनों भावसे हो, गुप्त प्रेममें अलौकिक रस है। यही सर्वगुह्यतम भाव गीतामें भगवान्‌ने अर्जुनको बताया—

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

(गीता १८। ६४-६५)

सम्पूर्ण गोपनीयोंसे अति गोपनीय मेरे परम रहस्ययुक्त वचनको तू फिर भी सुन। तू मेरा अतिशय प्रिय है, इससे यह परम हितकारक वचन मैं तुझसे कहूँगा। '**मन्मना भव**'—तुम मनके द्वारा निरन्तर मेरा ही चिन्तन करो। '**मद्भक्तः**' मेरेमें ही प्रेम हो, मेरा एक क्षणका वियोग भी मृत्यु-तुल्य हो, यही भाव है। '**मद्याजी**'—तुम्हारी यावन्मात्र सारी क्रिया ही मेरी पूजाके रूपमें हो। '**मां नमस्कुरु**'—हर वक्त ही प्रणाम करनेवाला हो,

तुम्हारा मस्तक हर समय ही मेरे चरणोंमें पड़ा रहे। लोक-दिखाऊ प्रणाम नहीं। भगवान् सत्य प्रतिज्ञा करते हैं कि ऐसा करनेसे तू मुझको ही प्राप्त होगा। एक क्षण भी नहीं छोड़ सके, यही असली शरण है। दस मिनटकी पूजा नहीं, तुम्हारा चलना, बोलना हर समय मेरी ही पूजा हो। सभी क्रियाओंसे भगवान्‌की ही पूजा हो। यह तो सूत्ररूपसे बताया है, कितना अर्थ है कोई क्या लिख सकता है। पूरी गीता जितनी टीका इस श्लोकपर लिख डालो, तब भी इसकी समाप्ति नहीं होगी। जैसे कपूरको डिब्बीमें रखकर निकाल लेनेपर भी उस डिब्बीमें गन्ध रहती है। महापुरुष जिस स्थानपर रहे हों, जहाँ उनके चरण टिके हों, जिस मार्गसे वे गये हों, उनकी अनुपस्थितिमें भी उससे बहुत लाभ होता है। जैसे तेज सुगन्ध छिप नहीं सकती, वैसे ही महापुरुष कितना ही अपनेको छिपायें, वे छिप नहीं सकते। महापुरुष जिस मार्गसे चले जाते हैं, उस मार्गपर उनके परमाणु, शक्ति, आनन्द सब बिखरे रहते हैं। उनके परमाणु नित्य हैं, लाखों वर्ष बीतनेपर भी वे रहते हैं। जितने तीर्थ हैं, वे प्रभु या उनके भक्तके सम्बन्धसे ही हैं और कोई कारण नहीं। अयोध्यामें प्रभुके भाव नित्य विराजमान हैं। दण्डक वन पवित्र हो गया। महाराज श्रीकृष्णचन्द्रजी व्रजमें प्रकट हुए, द्वारकामें वास किया। व्रज द्वारकासे भी विशेष महत्त्वकी है। जहाँ प्रकट होते हैं वह स्थान वास-स्थानकी अपेक्षा विशेष महत्त्वका होता है। लाखों वर्ष बीतनेपर भी उस स्थानपर परमाणु रहते हैं। भगीरथके प्रतापसे परम पावनी गंगाके दर्शन, स्नान कर पाते हैं। यह भागीरथी उन्हींकी कृपासे प्राप्त है। हम उनके ऋणी हैं। शंकरके मस्तकपर, ब्रह्माके कमण्डलुमें, भगवान्‌के चरणोंमें रहनेवाली चीज हमारे भाग्यमें कहाँ। सामान्य भावसे सबको लाभ मिलता है, श्रद्धासे विशेष मिलता है। श्रद्धासे स्नान करते ही मुक्ति हो जाती है। हमलोग यह समझ लें कि स्नान,

पानकी तो बात ही क्या, दर्शनसे भी कल्याण होता है तो हो ही जाता है, भाव होना चाहिये। हमलोग अगर यह निश्चय कर लें कि आज भगवान्‌का जन्म-दिन है, भगवान् प्रकट होंगे तो भगवान् अवश्य प्रकट होंगे। उनके प्रकट न होनेमें अपनी मूर्खता, पूर्वके पाप कर्म, वर्तमानमें अश्रद्धालुओंका संगके सिवाय और कोई हेतु नहीं है। श्रद्धा होनेके बाद एक क्षण भी भगवान् छिप नहीं सकते, अप्रकट रह नहीं सकते। अणु-अणुमें सर्वत्र भगवान् ही दीखेंगे। हमारी आँख दूसरी चीज देख ही कैसे सकती है। जिस तरफ देखो साक्षात् भगवान्-ही-भगवान् हैं। उत्तरोत्तर खूब विशेष महत्त्वकी बात होने लगे तो प्रभु फिर रुक थोड़े ही सकते हैं। जल्दी ही प्रकट होंगे। प्रभुकी कभी-कभी ललचानेकी इच्छा होती है।

❑ ❑

ईश्वर और महापुरुषके आज्ञापालनका महत्त्व

ईश्वर और साधु महात्माके अनुकूल चलनेमें और आज्ञापालनमें किसीको कठिनता मालूम दे तो वह बेसमझी है। वहाँ तो सुगमता, सौभाग्य, आनन्द और प्रसन्नताकी बात है। अच्छे पुरुष तो इस बातका उत्साह रखते हैं, प्रतीक्षा करते हैं कि ऐसा मौका मिल जाय। जैसे पुरस्कार लेनेका मौका मिलनेपर लेनेमें कोई कठिनाई नहीं होती। भगवान्‌का विधान भी वैसा ही है। ईश्वर और महापुरुषकी आज्ञा प्राप्त हो जाय तो वह पुरुष अपनेको कृतकृत्य समझता है। आनन्दमें इतना मुग्ध हो जाता है कि मेरे समान संसारमें है ही कौन? यही बात विधानके सम्बन्धमें है। प्रेरणासे भी आज्ञा और महत्त्वपूर्ण है। ईश्वरकी प्रेरणाके अनुसार कार्य बन जाय तो हम तो कृतकृत्य हो गये। ईश्वरकी आज्ञा बड़े भाग्यसे मिलती है। जैसे पास होनेवालेको ही पुरस्कार मिलता है, सबको नहीं। ईश्वरकी आज्ञा तो पुरस्कारसे भी बढ़कर है। यदि आज्ञापालनमें कठिनता प्रतीत होती है तो वह उस आज्ञाको इतना महत्त्वपूर्ण नहीं समझता। यह मालूम हो गया कि महात्माकी इस काममें सम्मति है, उस काममें प्रसन्नता होनी चाहिये। यदि संकेत प्राप्त हो गया तो उसके काममें लानेमात्रसे ही कल्याण है। इसमें और महत्त्वपूर्ण बात है; परन्तु वह समझमें आनी कठिन है। अगर महात्मा या ईश्वर आज्ञा दे दें तब तो हम उनके हो ही गये। गीतामें भगवान् प्रेरणा तो बहुत जगह करते हैं; किन्तु आदेश बहुत कम। प्रेरणाको भी आज्ञाकी तरह मान लें तो आज्ञाका ही फल होगा। आज्ञा और भी महत्त्वपूर्ण है और ज्यादा ऊँचा दर्जा वरदानका है, उससे ऊँचा दर्जा है वरकी इच्छा ही न होना, उससे ऊँचा दर्जा योगक्षेम और सबसे ऊँचा दर्जा

प्रवचन-तिथि—कार्तिक शुक्ल १५, संवत् १९९४ (दिनांक १८-११-१९३७), दोपहर, गोरखपुर।

निर्योगक्षेमका है। जो भगवान्‌की आज्ञाका पालन करते हैं, भगवान् उनका योगक्षेम वहन करते हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥

यह बात अनुभवकी है कि महापुरुषोंके पास सत्संगके लिये जानेवाले भाई लोग इच्छा करते थे कि आप कुछ फरमावें तो हमारा कल्याण हो गया।

हममेंसे किसी एकको ईश्वरकी प्रेरणा हो जाय, आकाशवाणीद्वारा या किसी महापुरुषद्वारा यह कह दें कि आपलोगोंमें एकके लिये प्रेरणा है तो सभी प्रफुल्लित हो जायँ कि कौन भाग्यवान् है। जिसका नाम प्रकट हो जाय, उसके आनन्दका क्या ठिकाना। अगर आनन्द नहीं होता तो उसने महत्त्व ही क्या समझा? यही बात महापुरुषकी आज्ञाके विषयमें है। बीस आदमियोंमें जिसका नाम प्रकट होता है, यदि वह श्रद्धावान् है तो उसे बलिदान भी कठिन नहीं मालूम होता। यदि साधारण काम भी कठिन मालूम दे तो श्रद्धा कहाँ? बस सभ्यतामात्र है, उद्दण्डकी अपेक्षा तो अच्छा है। भगवान् और महापुरुषकी आज्ञाका पालन पद-पदमें आनन्ददायक, शान्तिप्रद है। जितनी श्रद्धा और प्रेम हो उतनी ही शान्ति और आनन्ददायक है। धौम्यका शिष्य आरुणि बड़ी प्रसन्नतासे खेतमें सो गया। मृत्युकी भी परवाह नहीं की। गुरुजीने ही जाकर पुकारा तो प्रसन्नतासे दौड़कर आया। गुरुने कहा—तुम्हें सारे शास्त्र बिना पढ़े ही आ जायँगे। मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कार्य सफल हो गया। स्त्री पतिको साक्षात् ईश्वर मानकर

ईश्वर-दर्शनसे जो सुख और आनन्द हो, उसी तरह मानकर पतिकी आज्ञा माने तो एक ही आज्ञापालनसे उसका कल्याण हो सकता है। लाभ उठानेवालेपर ही निर्भर है, जो जितना चाहे लाभ उठा सकता है।

माता-पिताकी आज्ञाका पालन यों तो सब अच्छा समझते हैं और करते हैं, परन्तु उनको साक्षात् भगवान् मानकर, भगवान्‌की आज्ञा समझकर पालन करे तो उसको वह लाभ प्राप्त हो सकता है। श्रुतिभगवती कहती है—'**मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव।**' यही बात अतिथिके विषयमें है। हम अतिथिको नारायण समझें तो उसी क्षण नारायणकी सेवाका लाभ हो जायगा। लोग लाभ उठाना जानते नहीं। जब इच्छा हो, प्रभुको प्राप्त कर सकते हैं। किसीको निमित्त बना लें। खुला दरबार है।

इससे कम श्रद्धामें भी काम चल सकता है। नेवलेकी कथामें अतिथिको अतिथि समझनेवाले ब्राह्मणको इतना लाभ हुआ, यदि नारायण समझते तो न मालूम कितना लाभ मिलता। कुत्तेमें भगवान् निकल आते हैं फिर अतिथिकी तो बात ही क्या है। नामदेवजी घी लेकर कुत्तेके पीछे दौड़े कि महाराज सूखी रोटी ही ले चले, रुकें थोड़ा घी चुपड़ दूँ। भगवान् तो सब जगह हैं ही, ऐसा सरल भाव होना चाहिये। हम नारायणके दर्शन तो चाहते हैं; परन्तु उसका उपाय नहीं करते। उपाय करें तो सहजहीमें भगवान्‌का दर्शन हो सकता है। सब भक्तोंकी कथाका सार यही है।

एक मन्दिरका पुजारी था, किसी विवाहमें गया, भोग लगाकर भोजन करनेकी आज्ञा अपने पुत्रको दे गया। पुत्रको विश्वास हो गया कि भगवान् वास्तवमें भोजन करते हैं। भोग लगाया, भगवान्‌ने नहीं खाया। उसकी धारणा यह है कि भगवान् खाते हैं, फिर सावधानीसे बनाकर भोग लगाया। भगवान्‌ने नहीं खाया। उसने सोचा कि नहीं खानेसे तीन दिनमें भूखों मर जाऊँगा फिर अभी मरना अच्छा। मरनेके लिये तलवार उठायी, भगवान्

प्रकट हो गये। पिता आये, बालकने पिताको विश्वास करा दिया। भगवान् बोले—मैं तो तुम्हारी भावनाका भूखा हूँ, तुम्हारी रोटीका भूखा हूँ, आज्ञापालनका रहस्य न समझनेसे ही मूर्खतावश बात भारी मालूम देती है, अन्यथा उसमें इतना आनन्द आता है कि क्या कहा जाय?

उच्च श्रेणीके भक्त सिद्धि भी नहीं चाहते, शरणागत होनेके नाते भगवान् देते भी हैं तो भक्त स्वीकार नहीं करते। प्रेम और दया धर्मी बिना नहीं रहते। भक्त धर्मी है, उसमें प्रेम, भक्ति, दया सब कुछ है, भक्तकी भगवान्में एकता है। ज्ञानमार्गके अद्वैतमें दूसरी प्रकारकी अभिन्नता है। वहाँ ये सब प्रेम-दयाकी बातें नहीं हैं। वहाँ एक ही है, दूसरा नहीं है। अक्रिय-अवस्था है। वहाँ तो दृश्य संसारका अत्यन्त अभाव ही है। वहाँ जो चीज है उसको चाहे भक्त, चाहे भगवान्, चाहे ज्ञानी जो कुछ भी कह दें। भक्तिमार्गसे प्राप्त पुरुष ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग दोनों प्रकारके साधकोंको उपदेश दे सकता है। ज्ञानमार्गवाला भक्तिमार्गके साधकोंको पूरी बात नहीं बता सकता। शास्त्रके आधारपर ही बता सकता है। ज्ञानमार्गवालोंको ही उपदेश दे सकता है। प्रश्न उठता है कि जब दयाका पात्र बन जानेपर ही दया हो तो भगवान् दयावान् कैसे हुए।

सूर्यकी रोशनी सब जगह है पर सही पात्रपर किरण पकड़ी जाती है। सूर्यमुखी काँच ही पकड़ पाता है। मुख्य बात तो सूर्यकी रोशनी है, यदि रोशनी है ही नहीं तो अंधेरेमें सूर्यमुखी लिये बैठा रहे। जितना उदाहरण जड़का दिया जाता है उनसे यह विशेषता चेतनमें है कि वह उसको पात्र जरूर बना लेंगे। परन्तु उसीको बनाते हैं जो यह माने कि मुझको पात्र बना लेंगे।

भगवान् अपात्रको भी पात्र बना लेते हैं। यह बात माननी चाहिये तभी भगवान्पर यह भार आता है। यह विश्वास करना ही चाहिये कि भगवान् अपात्रको भी पात्र बना लेते हैं। जो मनुष्य भगवान्के विषयमें जैसा विश्वास कर लेते हैं, उसके विषयमें

भगवान्‌को बाध्य होकर वैसा ही करना पड़ता है। जो यह मान लेता है कि भगवान् किसी भी, कैसे भी पापीकी ओर देखते ही नहीं, अपना लेते हैं। जो जितने समयका अपनेमें निश्चय करता है, भगवान् उतने ही समयमें पकड़ लेते हैं। कानून यह है कि वह जितनी धारणा कर लेता है उतनी ही मिल जाती है। जितनी ज्यादा-से-ज्यादा हम धारणा करें, भगवान्‌में उतनी गुंजाइश है, अगर हम समझें कि भगवान्‌से यह वरदान लेंगे कि सबका कल्याण करें, परन्तु उस समय यह मनमें रहे कि सबका कल्याण होना कठिन है तो वह कठिनता सबके लागू पड़ जायगी। जो एक नामसे उद्धार समझता है, उसका एक ही नामसे उद्धार हो जायगा, जो जीवनके अन्ततक होना समझता है, उसका अन्ततक हो सकता है। जो जितना विश्वास करता है उससे अधिक ही मिलता है, कम नहीं। मूल्यवान् हीरेका कितना आदर करता है। नाम-जपके समय इतनी प्रसन्नता कहाँ दीखती है। इतनी कीमती चीज कहाँ समझता है। इसी प्रकार भगवान्‌के नाम, स्वरूप किसी वस्तुको लें।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५। १९)

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।

यह तो कानूनसे, युक्तिसे सिद्ध बात है। यह अवस्था तो हमारी होनी ही चाहिये। मूर्खके सामने भी पाँच चीज रखो, थोड़ा भी समझदार पैसेको छोड़कर मोहर लेगा। अगर दूसरी चीज लेता है तो वह मोहरकी कीमत नहीं जानता। भजनको छोड़कर दूसरी तरफ दौड़ता है तो भजनका महत्त्व कहाँ समझता है। लोग पैसों-जितना भी भगवान् और भजनका महत्त्व समझें तो फिर इनके लिये भगवान्‌के भजनको कैसे छोड़ सकते हैं। अगर किसीको

पन्द्रह मिनट, आधा घण्टा कभी बहुत आनन्द शान्ति प्राप्त होती है तो वह असली आनन्द नहीं है। हाँ, साधककी दृष्टिमें तो वह बहुत बड़ी चीज है, क्योंकि उसको कभी ऐसी चीज नहीं मिली, परन्तु असलीका तो वह आभास है; क्योंकि '**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।**' (गीता २। १६) असत् वस्तुका तो अस्तित्व नहीं है और सत्का अभाव नहीं है। अगर बूँदमात्र भी होता तो उतना ठहर ही जाता। असलीकी बूँद भी तो असली होती है। ऐसी स्थितिको पकड़े रखे, छोड़े नहीं। प्रभुके रत्तीभर प्रेमके लिये जो प्राण न्योछावर करनेको तैयार होता है, प्रभु उसके लिये प्रकट हो जाते हैं। परमात्मा निर्गुण-निराकार, सगुण-साकार, सगुण-निराकार जैसे चाहे उस रूपसे विराजमान हैं, तभी तो प्रतीत होते हैं। आनन्दरूपसे सब जगह विराजमान हैं, इसलिये आनन्द प्रतीत होता है। दियासलाईसे जल नहीं निकलता। आनन्दरूपका कहीं चिलका पड़े तो उस चिलकेको पकड़े। दर्पणके चिलकेसे दर्पणका और उससे सूर्यका पता लग सकता है। अगर उस चिलकेको हम नहीं छोड़ें। जहाँसे चिलका आता है और जिसके बलपर चिलका आता है उसको हम नहीं छोड़ें, तभी असली चीजको पकड़ पाते हैं। बुद्धिरूपी नेत्रसे उसको पकड़कर मुग्ध हो जाय। भगवान् सर्वत्र व्यापक हैं। शंकरभगवान्ने कहा है—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

भगवान् सर्वत्र समानरूपसे व्यापक हैं, प्रेमसे प्रकट होते हैं। भगवान् विज्ञान-आनन्दघनरूपसे सब जगह प्रत्यक्ष परिपूर्ण हो रहे हैं, जैसे दियासलाईमें आग व्याप्त है और रगड़से प्रकट हो जाती है, वैसे ही वे ज्ञान-आनन्दरूप भगवान् जिस रूपमें हम चाहें, हमारे सामने उसी रूपमें प्रकट हो जाते हैं। प्रेमकी बाहुल्यतासे भगवान् प्रकट होकर दृष्टिगोचर हो जाते हैं। महात्माकी, ईश्वरकी, भगवान् शंकरकी बातको मानकर निश्चय कर लें। बारम्बार आवृत्ति करनेसे, बारम्बार मनमें जचानेसे प्रत्यक्ष ऐसा ज्ञान-आनन्द मालूम होने लगता

है मानो उसे ज्ञान-आनन्दके समुद्रमें डुबो दिया हो। जैसे आकाशमें नेत्रोंके दोषसे मकड़ीके जाले-से दीखते हैं। बुद्धिमें निश्चय है कि यह कुछ भी नहीं है, ऐसे ही यह संसार दीखने लगता है, आगे जाकर वह स्थिति ठहर जाती है। प्रतिबिम्ब ऐसा है तब वह बिम्ब कैसा होगा। यह वही अनुभव कर सकते हैं जिनपर प्रभुकी विशेष कृपा होती है। जिसको प्रभुका आभासमात्र भी प्राप्त हो जाय उसे तो प्रभुने अपना लिया। अब उसको अपना कर्तव्यपालन करना चाहिये। जिसके चिलकेमें, आभासमें यह मोहिनी, यह आनन्द है, फिर असली चीज मिलनेपर तो आनन्दका ठिकाना ही नहीं रहता।

ईश्वर और महात्माकी पूर्ण दयाका पात्र वही है जो सब प्रकारसे उनकी शरण है। जितना-जितना शरण हो जाता है, उतना-उतना ही दयाका पात्र हो जाता है। स्त्री पतिके, पुत्र माता-पिताके, सेवक स्वामीके, प्रजा राजाके, भक्त-भगवान्‌के, साधक-महात्माके शरण होकर लाभ उठा लेता है।

तीन चीजें प्रधान हैं—इन्द्रियाँ, अन्तःकरण और शरीर—इनको अर्पण करनेसे भगवान् बहुत जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं। अन्तःकरणका अर्पण—अन्तःकरणमें प्रभुके सिवाय किसीको स्थान न दें। अन्तःकरणके प्रधान दो भेद हैं—मन और बुद्धि।

बुद्धिसे सर्वत्र भगवान्‌के प्रत्यक्ष होनेका निश्चय करना चाहिये। किंचिन्मात्र भी शंका नहीं करनी चाहिये। सदा-सर्वदा ऐसा निश्चय करना चाहिये। मनमें प्रभुके मिलनकी उत्कट इच्छा, प्रभुका ही स्मरण अर्थात् प्रभुके ही नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला आदिका चिन्तन, प्रभुमें तुष्टि, पुष्टि, प्रभुमें ही प्रेम, इतना प्रेम कि एक क्षण भी चिन्तन न हो तो परम व्याकुलता होनी चाहिये, जलके वियोगमें मछलीकी जो दशा होती है, प्रभुकी विस्मृतिमें मनमें ऐसी ही तड़पन होनी चाहिये। प्रभुके सिवाय मनमें और किसीकी गुंजाइश न हो। प्रभु मनमें वास करें और मन प्रभुमें वास करे। प्रभु मनमें रमें और मन प्रभुमें रमे। मन

प्रभुके अर्पण हो, अपनी बागडोर प्रभुके हाथमें सौंप दें। अपने द्वारा जो कुछ भी क्रिया हो, मानो भगवान् ही करा रहे हैं। भगवान्‌को ही कठपुतलीकी तरह सौंप दें। सूत्रधार नचाता है, वैसे ही कठपुतली नाचती है। कठपुतलीकी सारी क्रियाएँ सूत्रधारकी इच्छानुसार होती हैं। इसी प्रकार अपने-आपको भगवान्‌के अर्पण कर दें। भगवान् जैसे करायें वैसे ही करें। भगवान्‌की हाँमें हाँ, इच्छामें इच्छा, प्रसन्नतामें प्रसन्नता, अनुकूलतामें अनुकूलता होनी चाहिये। ऐसा मनुष्य ही पूर्ण दयाका पात्र है।

भगवान्‌के भक्तोंद्वारा जो बातें जानी हुई हैं, सुनी हुई हैं कि इन बातोंसे भगवान् प्रसन्न होते हैं, वही क्रियाएँ हमसे हों, अपना कोई स्वार्थ न हो। भगवत्-इच्छा, आज्ञा-प्रेरणासे सारी क्रिया होगी, तब वाणीसे जो कुछ उच्चारण होगा, वह भगवान्‌का नाम, गुण और मृदु, सत्य, प्रिय वचन उच्चारण होगा। किसीके लिये हानिकर वचन नहीं होंगे, सबके हितकर वचन होंगे। ईश्वरके रहस्य, प्रेम, गुण, तत्त्वोंका वाणीसे कथन व्यर्थ नहीं होगा। हाथोंके द्वारा सबका यहाँ-वहाँ हित हो ऐसी क्रिया होगी। नेत्र, चरण, सारी इन्द्रियोंसे ऐसी क्रिया होगी जो प्रभुके, महापुरुषके, शास्त्रके अनुकूल हो। अपनी आत्मा जहाँ गवाही दे कि यही सबसे बढ़कर है, वही प्रभुके अनुकूल है। उन क्रियाओंके होनेके समय बड़ी प्रसन्नता, शान्ति, उत्साह, मुग्धता होगी।

प्रभुकी दयासे प्रभुके अनुकूल ही सब क्रिया हो रही है। उस दयाकी ओर खयाल करके मनमें आनन्द नहीं समाता। समय-समयपर अश्रुपात हो रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सबसे ज्यादा मुझपर ही कृपा है। विचारसे तो समझता है कि सबपर समानभावसे ही कृपा होनी चाहिये, परन्तु उसको अपने ऊपर अद्भुत कृपा प्रतीत होती है। आनन्दकी सीमा नहीं रहती। एक पतिव्रता स्त्री थी। सारी क्रियाओंसे पति मेरेपर प्रसन्न रहें, यही उसका ध्येय था। यही पातिव्रतधर्म है। उसके पतिको भी इस बातका ज्ञान था कि मेरी स्त्री पतिव्रता है। पतिने मनके विरुद्ध चेष्टा करके उसकी परीक्षा करनी

चाही। परीक्षा उसे ऊँचा उठानेके लिये, उत्साह बढ़ानेके लिये भी की जा सकती है। एक समय वह भोजन कर चुका था, स्त्री भोजन करने बैठी। थोड़ा-सा भोजन किया ही था कि पतिने एक अंजलि बालू उस भोजनमें डाल दी और हँसने लगा। वह स्त्री भी हँसने लगी। पतिने पूछा तू क्यों हँसती है। वह बोली—आपकी प्रसन्नताको देखकर ही हँसती हूँ, मेरी प्रसन्नताका मूल कारण तो आपकी प्रसन्नता ही है और कोई कारण मैं नहीं जानती। पतिने कहा कि मैंने तो तुम्हारे मनमें विकार उत्पन्न करनेकी परिस्थिति पैदा की थी और हँसा था। स्त्री बोली कि आप मुझमें विकार देखना चाहते हैं, यह मुझे पता न था। आप मुझमें विकार नहीं देखते, यह आपकी ही कृपा है। विकार होना तो स्वाभाविक ही है। यह उच्च भाव है। अपनी सारी क्रिया स्वामीके अनुकूल हो, ऐसा पुरुष पूर्ण दयाका अधिकारी है। ऐसे बहुत-से उदाहरण हैं। हमारी एक इच्छा है, हम एक काम कर रहे हैं, स्वामीकी इच्छा दूसरी देखी, यह बात उनकी आज्ञा, संकेत किसी प्रकार मालूम हो गयी, बस उसी क्षण हमारी पहली इच्छा प्रसन्नतापूर्वक परिवर्तित हो गयी और उनके अनुकूल ही क्रिया होने लगी। चाहे हमारा बलिदान ही क्यों न हो। यद्यपि स्वामीसे हमारे हृदयकी कोई बात छिपी नहीं है, परन्तु वे यदि विनोदसे पूछते हैं तो अपनी इच्छा प्रकट कर दी। जबतक सेवक प्रभुको प्राप्त नहीं हो जाता, पूर्ण स्थिति प्राप्त नहीं हो जाती, तबतक स्वामीके सब भावोंको नहीं समझ पाता। उनके इशारेसे ही चलता है। प्राप्त होनेपर तो उनकी इच्छाका उसे पता लग जाता है। वह उनके विपरीत चल ही नहीं सकता। ऐसी स्थिति न होनेतक स्वामीके पूछनेपर बालककी भाँति अपना भाव जैसा-का-तैसा कह देता है।

विवाहमें पति स्त्रीको आदेश देता है कि मेरे मनके अनुकूल तुम्हारा मन हो, इस प्रकार जो स्त्री बन जाती है, वही पतिव्रता है। इसी प्रकार पुत्र, शिष्य, सेवक, भक्त सभी अपने माता-पिता, गुरु, स्वामी, ईश्वरके लिये हो जायँ, वह परिवर्तन अगर स्वामीके

संकोच, दबाव, भय या अन्य किसी प्रकारसे हुआ तो वह कमी है। स्वामीका आशय वाणीसे, संकेतसे किसी प्रकार भी मालूम हो जाय और होते ही प्रसन्नतासे वैसा ही भाव हो जाय तो फिर विलम्बका काम नहीं। इसीका नाम शरण, अनन्य शरण, अनन्य भक्ति है। यही सबसे बढ़कर है।

कठपुतली अपनी क्रिया ही अर्पण नहीं करती, अपना देह भी अर्पण कर देती है। सूत्रधार अपने मनके माफिक व्यवहार करता है। इसी प्रकार हमलोग अपने-आपको परमात्माके समर्पण कर दें। सूत्रधार कठपुतलियोंका बादशाह है। चाहे एक मूर्तिसे दूसरीको मरवा दे तो उस कठपुतलीको हर्ष आदि नहीं होता। दैवयोगसे, प्रभुकी इच्छासे जो कुछ भी हमलोगोंको आकर प्राप्त हो, प्रभुकी लीला समझते हुए हमारी क्रिया प्रभुके अनुकूल हो और दूसरोंकी प्रत्येक क्रियाको प्रभुका विधान समझकर उत्तरोत्तर प्रसन्नता बढ़ती रहनी चाहिये। अच्छे खेलनेवाले दर्शकोंको उत्तरोत्तर प्रसन्न करते रहते हैं, प्रभुकी यह क्रीड़ा-स्थली, बगीचा है, स्वयं प्रभु बड़ी चतुरतासे खेल रहे हैं। उनके समान बाजीगर कोई नहीं है, अद्भुत खेल है। कोई दूसरा ऐसा खेल नहीं कर सकता। तमाशा देखनेवालोंकी अपेक्षा हमलोगोंको लाखों, करोड़ों गुनी प्रसन्नता इस खेलको देखकर होनी चाहिये। हमारी क्रिया उस नटको मन-बुद्धिमें धारण किये हुए प्रसन्नतापूर्वक होती रहे। यही अनन्य शरण, अनन्य भक्ति है। यही हमारा परम धन, प्राण, भक्ति है। यह भाव ईश्वरकी दयासे ही हो रहा है। हमारी सामर्थ्य थोड़े ही है।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(गीता २। ४०)

निष्काम कर्मयोगके आरम्भका नाश नहीं होता, प्रत्यवाय नहीं होता, इसका थोड़ा भी साधन महान् भयसे उद्धार करनेवाला होता है। जहाँ प्रतिकूलता-अनुकूलता, राग-द्वेष होते हैं, वहाँ विषमता

होती है और जहाँ ये नहीं होते, वहाँ समता है। शास्त्रविहित क्रिया हो, स्वार्थरहित हो, वह कर्मयोग है। यह तो कर्मप्रधान है। इसमें भगवदर्थ, भगवदर्पण जोड़ दिया जाय तो यही कर्मयोग भक्तिप्रधान कर्मयोग हो जाता है। इस निष्काम कर्मयोगके अभिक्रमका नाश क्यों नहीं होता? फलकी इच्छासे किया हुआ कर्म फल देकर नष्ट हो जाता है। जो फलकी इच्छासे रहित केवल भगवान्‌के लिये किया जाता है, वह नित्य हो जाता है। उदाहरण—किसान खेती करते हैं। चूहे बीज खा जाते हैं, वर्षा न हो तो अंकुर नष्ट हो जाते हैं। टिड्डी खा जाती है। निष्काम कर्मयोगमें यह बात नहीं है। जितना आरम्भ हो गया। नित्य परमात्माकी प्राप्तिके लिये जो क्रिया होती है, उसे प्राप्त करके ही छोड़ती है। जन्म-जन्मान्तरतक भी वह बनी ही रहती है। प्रत्यवाय नहीं, उलटा परिणाम लाभकी जगह नुकसान नहीं होता। कामनासे, स्वार्थसे किये हुए कार्यमें उलटा फल हो सकता है, देवी-देवता अमृत फल दे सकते हैं। कोई बिना स्वार्थ काम करता है, वेतन, मान-बड़ाई कुछ भी नहीं चाहता, उससे भूल हो तो कोई दण्ड नहीं होता। प्रत्युपकारकी बात इसमें नहीं है। ऋणसे उऋण होना उसमें नहीं है। जैसे नित्य-नैमित्तिक कर्म करने ही चाहिये। ऐसी बात भी इस निष्काम कर्मयोगमें नहीं है कि इसके न करनेसे कोई दण्ड मिलेगा। अक्रियासे क्रियाकी उत्पत्ति नहीं होती। प्रत्यवायका यह अर्थ लेना युक्तिसंगत नहीं है कि इसमें विघ्न-बाधा नहीं आते। अच्छे कामोंमें विघ्न-बाधा तो आ सकती है। शूरवीर लोग उसकी परवाह नहीं करते।

यदि भाव सकाम हो तो बहुत कालतक की हुई क्रिया भी मुक्तिदायक नहीं होती। ऊँची-से-ऊँची क्रिया भी यदि निष्कामभावसे युक्त न हो तो वह मुक्तिदायक नहीं होती।

यदि भाव पूरा निष्काम है और क्रिया अल्प है, वह भी उसी क्षण उसका उद्धार कर देती है। थोड़ी क्रियासे भी उद्धार हो सकता है किन्तु निष्कामभाव पूर्ण होना चाहिये।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥ (गीता २।७२)

हे अर्जुन! यह ब्रह्मको प्राप्त पुरुषकी स्थिति है, इसको प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता और अन्तकालमें भी इस ब्राह्मी-स्थितिमें स्थित होकर ब्रह्मानन्दको प्राप्त हो जाता है।

इतना महत्त्व जिस निष्काम कर्मयोगका है, उसका हम आचरण क्यों नहीं करते? हमारी आदत सदासे ही बिगड़ी हुई है, सबसे पहले उस काममें हम अपना लाभ खोजते हैं। इसीका नाम स्वार्थ है। निष्काम कर्मयोगमें जो चलना चाहता है वह प्रत्येक क्रियाके आरम्भमें यह सोचे कि इससे लोगोंका क्या लाभ है, अपना लाभ न सोचे। यदि संसारमें किसीका लाभ हो तो उस क्रियाको आरम्भ करे। चलना, फिरना, बात करना, सब क्रियामें दूसरोंका लाभ देखे। हमारी कोई क्रिया व्यर्थ, प्रमादमय, फालतू नहीं होनी चाहिये।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥ (गीता ९।१२)

वे व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म और व्यर्थ ज्ञानवाले विक्षिप्तचित्त अज्ञानीजन राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृतिको ही धारण किये रहते हैं।

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥ (गीता १२।४)

जो पुरुष इन्द्रियोंके समुदायको भली प्रकार वशमें करके मन-बुद्धिसे परे सर्वव्यापी, अकथनीय स्वरूप और सदा एकरस रहनेवाले, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको निरन्तर एकीभावसे ध्यान करते हुए भजते हैं, वे सम्पूर्ण भूतोंके हितमें रत और सबमें समान भाववाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥
परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

सभी प्राणियोंके हितमें रत मुझे ही प्राप्त होते हैं। हमारी प्रत्येक स्फुरणामें परहित, सबका कल्याण रहना चाहिये। यही महर्षियोंका आदेश है। संध्या-गायत्री सभीमें यही भाव है। **'पश्येम शरदः शतम्'**, गायत्री-मन्त्रमें सबको निर्मल बुद्धि, तर्पणमें सबकी तृप्ति, शत्रुकी भी, मनुष्य-पशु-पक्षी सबकी तृप्ति, बलिवैश्वदेवमें सारे विश्वको भोजन देता है, कितना ऊँचा भाव है। अग्निके द्वारा सारे विश्वको भोजन देता है। अग्निसे सूर्यको, उससे मेघको और फिर सारे विश्वको आहुति प्राप्त होती है। हवनमें आहुति देते हैं—**'ॐ ब्रह्मणे स्वाहा इदं ब्रह्मणे न मम।'** यह निष्कामभाव है। हमारी सारी क्रिया स्वार्थरहित होगी तो हम महात्माकी तरह हो जायँगे। भगवान् स्वयं कहते हैं—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥ (गीता ३।२२)

हे अर्जुन! मुझे इन तीनों लोकोंमें न तो कुछ कर्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करनेयोग्य वस्तु अप्राप्त है, तो भी मैं कर्ममें ही बरतता हूँ।

जैसे महात्मालोग कर्ममें बर्तते हैं वैसे हमें बर्तना चाहिये। शरीरके लिये अन्न, वस्त्र देनेकी बात, पोषण करना स्वार्थ नहीं है। भगवान्का प्रसाद समझकर पाना चाहिये।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ (गीता ३।१३)

यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और जो पापीलोग अपना शरीरपोषण करनेके लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पापको ही खाते हैं।

प्रसाद पानेवाले सारे पापोंसे छूट जाते हैं। प्रसाद अमृत है, इससे जीवन नित्य हो जाता है। ऐसा करनेवाला सनातन ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है।

❑❑

प्रभुसे पुकार करें

कोई भी बात सुनकर, पढ़कर काममें नहीं आती है। यह उसके श्रद्धाकी, प्रेमकी कमी है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः। (गीता ४।३९)

श्रद्धावान्‌को ज्ञान प्राप्त होता है। श्रद्धाके अनुसार ही तत्परता होती है। जिस किसी काममें तत्परता नहीं होती, उसमें विश्वासकी कमी है। प्रथम तो यह विश्वास होना ही चाहिये कि ईश्वर हैं। फिर यह कि वह सर्वत्र हैं, सर्वान्तर्यामी हैं। फिर उनपर भरोसा करना चाहिये। यह विश्वास करना चाहिये कि इनसे बढ़कर और कुछ नहीं है। बहुत भारी निर्भयता, शान्ति, प्रसन्नता प्रत्यक्ष आ जाती है। यह समझ ले कि भगवान्‌के समान ही कोई वस्तु नहीं है, फिर बढ़कर क्या होगी। यह समझनेके बाद भगवान्‌का चिन्तन छूट ही नहीं सकता।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥ (गीता १५।१९)

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेवको ही भजता है।

अगर भगवान्‌को भूलता है तो यही समझना चाहिये कि वह भगवान्‌को सर्वोत्तम नहीं समझता। जो भगवान्‌का निरन्तर चिन्तन करता है, भगवान् सब प्रकारसे उसकी रक्षा करते हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ (गीता ९।२२)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

लौकिक योगक्षेमकी तो बात ही क्या, प्रभु पारलौकिक

प्रवचन-तिथि—मार्गशीर्ष कृष्ण १, संवत् १९९४ (दिनांक १९-११-१९३७), दोपहर, गोरखपुर।

योगक्षेम वहन करते हैं। हर समय पास रहते हैं। माता बालककी जैसे रक्षा करती है, उससे बढ़कर रक्षा करते हैं, अपनी प्राप्ति करा देते हैं। प्रभुकी जिस समय विस्मृति हो उस समय एकान्तमें विनयभावसे प्रभुसे प्रार्थना करे—हे नाथ! आपके रहते मेरी यह दशा, मैं निश्चय ही बड़ा भारी पापी हूँ, मेरा अन्तःकरण मलिन है, मैं महान् अपराधी और पापी हूँ, इसीलिये आपमें श्रद्धा और प्रेमकी कमी है। हे नाथ! आपका यह कानून है कि आप शरणागतकी रक्षा करते हैं। जो कुछ कमी है, मेरी ही है। आप तो पतितपावन, दयाके सागर हैं। मैं विचार-विवेकके द्वारा आपकी शरण होना चाहता हूँ, किन्तु मेरा पाजी मन सुनता नहीं है। इसमें जो श्रद्धा-प्रेमकी कमी है, वह तो आपकी कृपासे ही पूर्ण होगी। आतुर क्या नहीं कर सकता। मैं कुपात्र हूँ, आपके बिना दूसरा कौन सँभालेगा, आपकी अपार दया है। हे नाथ! जब दयाकी तरफ दृष्टि जाती है तो मैं मुग्ध हो जाता हूँ; परन्तु ऐसी दृष्टि हर समय नहीं रहती। विशेष दया करनेसे ही काम पार पड़ेगा। बस यही प्रार्थना है कि आपकी दया सर्वत्र मुझको प्रतीत होती रहे। आपकी स्मृति हर समय मुझे होती रहे। फिर प्रसन्नता और शान्तिका तो कहना ही क्या? वह उसके अधीन ही है। हे नाथ! मैं बल चाहता हूँ, मदद चाहता हूँ जिससे निरन्तर चिन्तन बना रहे। इस प्रकार एकान्तमें प्रभुके सम्मुख दिल खोलकर प्रार्थना करे। वास्तवमें सच्ची आवाज हो तो करुणासागरतक अवश्य पहुँचेगी। समय बहुत थोड़ा है, प्रभुकी इतनी कृपा होकर भी प्रभुकी प्राप्ति नहीं हुई तो हमारा जन्म व्यर्थ समझा जायगा। सबसे श्रेष्ठ मनुष्यशरीर, सर्वश्रेष्ठ आर्यावर्त देश, उत्तम जाति, सब प्रभुकी कृपासे प्राप्त है, फिर भी प्रभुकी प्राप्तिमें विलम्ब हो रहा है। यह हमारी मूर्खता नहीं तो और क्या है। गीता-जैसी पुस्तक मौजूद है। भगवन्नामका माहात्म्य महात्मा डंकेकी चोट बताते हैं। हर समय प्रभुको पास समझकर रुदन करते हुए

विलाप करें। बिना आपके कोई सँभालनेवाला नहीं है। कंचन, कामिनी, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा हर समय पीछे लगे रहते हैं। आप दयालु हैं, यद्यपि आप ध्यान रखते ही हैं; फिर भी विशेष प्रार्थना करता हूँ, क्योंकि आपके सिवाय कहीं गति नहीं है। मायाके वशीभूत होकर यह दशा हो रही है। वही पुरुष बुद्धिमान् और श्रेष्ठ है जो वही काम करता है जिसके लिये मनुष्यशरीर मिला है। सत् वस्तु यानि परमात्माको प्राप्त करनेके लिये यह मनुष्यशरीर मिला है। प्रभुने मौका दिया है—सत् वस्तुका ही संग्रह करना चाहिये।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। (गीता २।१६)

असत्की सत्ता नहीं है और सत्का अभाव नहीं है। धन, मकान आदि ऐश्वर्य प्रत्यक्षमें नश्वर हैं, ऐसे भोग-पदार्थोंका संग्रह करनेमें जो अपना समय बिताता है, विचार करनेपर मालूम होता है कि वह मूर्ख है। मरनेपर यह शरीर भी हमारे साथ नहीं जाता। यह शरीर एक क्षणमें शान्त हो जाता है। आज ही मृत्यु आ जाय, यदि काम अधूरा रह गया, तो रह ही गया। अमूल्य समय अमूल्य काममें ही बिताना चाहिये। महापुरुषोंको अपना लक्ष्य बनाकर उसीके अनुसार अपना जीवन बिताना चाहिये। हमारी बुद्धिमें सबसे श्रेष्ठ जिनके चरित्र आवें, उनको लक्ष्य बनाकर हमारी सारी क्रिया करनी चाहिये। उदाहरणके लिये भगवान् रामको आदर्श बनावें—प्रभु अपने मित्रोंके साथ कैसा व्यवहार करते थे, सीताजीके साथ कैसा बर्ताव करते थे, भाइयोंके साथ, महात्माओं, ऋषियों, प्रजा, आश्रित सबके साथ कैसा व्यवहार करते थे, वैसा ही हम करें। प्रभु हमारे सामने खड़े रहें। रामचरित्र हमारे नेत्रोंके सामने नाचता रहे। इससे निरन्तर उनकी स्मृति भी रह सकती है। उनका आचरण सामने रहनेसे हमारा व्यवहार भी सुधर सकता है। दया, क्षमा, सरलता, समता, शान्ति, मृदुता—ये सारे मानसिक भाव एकत्र होकर हमारे हृदयमें आ

सकते हैं। विशेष कोशिश करें तो बहुत शीघ्र आ सकते हैं। जो इस प्रकार प्रभुके भावोंको समझकर अपना जीवन प्रभुके अनुकूल बना लेता है, वही सच्चा सेवक है।

जब-जब राग, द्वेष, ममता, अहंकार, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा आकर दबायें तो हे नाथ! हे नाथ! पुकारें। जैसे—चोर, डाकूके आनेपर पुलिस या सहायता करनेवालेको पुकारता है उसी प्रकार प्रभुको पुकारें। हे नाथ! मैं अनाथकी तरह मारा जा रहा हूँ। आपके बिना सहायता करनेवाला कोई नहीं। राग-द्वेष, काम-क्रोधादि दुर्गुण सब डाकू हैं। जैसे बिगुल बजानेसे पुलिस आ जाती है, उसी प्रकार भगवान्‌को पुकारना बिगुल है, उसे बजानेसे चोर-डाकू नहीं ठहर सकते। अपनी बुद्धि और विचारोंके अनुसार जो क्रिया, भाव सबसे बढ़कर हो उसके अनुसार अपना जीवन बितावें। हम निष्कपटभाव, सत्यभाषणको उत्तम समझते हुए कपट और असत्य बोलते हैं तो स्वयं ही आत्माका पतन करते हैं, अग्निमें झोंकते हैं। ब्रह्मचर्यको उत्तम समझते हुए अगर पालन नहीं करते तो अपने-आप ही गलेमें छुरी मार रहे हैं। हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, नास्तिक कोई भी हो, सबके लिये यही बात है। इसीलिये भगवान् कहते हैं—अपने-आपके द्वारा अपना पतन न करे, समझ-सोचकर बेपरवाह रहना, जो सबका होगा हमारा हो जायगा, यह सोचकर विचार न करना यही मूढ़ता है, अपना विनाश करना है।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ (गीता ६।५)

अपने द्वारा अपना संसार-समुद्रसे उद्धार करे और अपनेको अधोगतिमें न डाले, क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।

इसी प्रकार श्रुति कहती है—'**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत**'। तुलसीदासजी कहते हैं—

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

कबीरदासजी कहते हैं—

कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाइ।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखहु आइ॥

विचार करनेपर हरेक समझ सकता है कि त्यागसे शान्ति मिलती है '**त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्**' केवल त्यागसे परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। जिसमें जितना त्याग है उतना ही वह परमात्माके नजदीक है।

कबीरदासजी कहते हैं—

कंचन तजना सहज है सहज तियाका नेह।
मान बड़ाई ईर्ष्या दुर्लभ तजना एह॥

कबीरदासजीके लिये कंचन, कामिनीका त्याग भी सहज है। जिसमें लोभकी वृत्ति नहीं है, वह साधारण पुरुष नहीं है।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥ (गीता ६।८)

जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त है, जिसकी स्थिति विकाररहित है, जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं और जिसके लिये मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण समान हैं, वह योगी युक्त अर्थात् भगवत्-प्राप्त है, ऐसे कहा जाता है।

महात्माकी दृष्टिमें मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण तीनों समान हैं। जो इस बातको लक्ष्य करके चलता है, उसमें धीरे-धीरे यह भाव आ जाता है। प्रभुकी दयासे तो शीघ्र ही आ जाता है। जिनपर प्रभुकी विशेष दया है, उनके लिये कंचन तजना सहज है। स्त्री दर्शन, स्पर्श, भाषण, चितवनसे मुग्ध कर डालती है। मनुष्य उसमें फँसकर अपना नाश कर डालता है। आग तो स्पर्शसे घातक होती है, परन्तु स्त्रीका तो चिंतन भी घातक है, स्पर्शकी तो बात ही क्या है। शास्त्रोंने बहुत उपाय बताये हैं, किन्तु प्रभुकी

कृपा बिना सब रद्द हो जाते हैं। सारे पदार्थ परिणाममें दुःख देनेवाले हैं। यह शरीर हाड़-मांसका पिंजर है। उसमें विष्ठा, मूत्र भरा है, उससे उपराम रहना चाहिये। शास्त्र कहते हैं, महात्मा कहते हैं। हमारे देखते-देखते यह शरीर नष्ट हो जाते हैं, अनित्य, क्षणभंगुर पदार्थ है; किन्तु उस समय ज्ञान, विवेक, विचार नष्ट हो जाते हैं। महापुरुष जो जीवन्मुक्त, सदाचारी, परमात्माके प्यारे, जिनमें इनका नाम-निशान नहीं हैं, वे हमें चेत करा सकते हैं—

खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥

इसके सिवाय यह उपाय है—हे नाथ! हे दीनबन्धु! हे गोविन्द! हे हरे! यह पुकार लगावें। शरण ही सबसे बढ़कर उपाय है। इस प्रकार जो विश्वास करके पुकार लगाता है, ईश्वर उसकी मदद करते हैं। आर्तकी आर्तता, अर्थार्थीको अर्थ, जिज्ञासुकी जिज्ञासा सबको प्रभु पूर्ण करते हैं। योगक्षेमका वहन करते हैं। द्रौपदीकी तरह पुकार करनेसे प्रभु रक्षा करते ही हैं। यह सकामभाव भी हमें बुरे मार्गसे बचानेवाला है। प्रभुके मार्गमें सहायक है। इससे आगे फिर ***'मान बड़ाई ईर्ष्या दुर्लभ तजना एह।'*** प्रभुकी शरण लेनेवाला इनको भी त्याग देता है। हे नाथ! यह मान, प्रतिष्ठा मुझे अमृत-सी लगती है; परन्तु मेरे लिये घातक है, इस आगसे मुझे बचाइये। मुझे तो आग नहीं दीखती, इसलिये मैं इनमें फँस रहा हूँ। महात्मालोग यह कहते हैं मानको विष और अपमानको अमृत समझो। चैतन्य महाप्रभुने कहा है—**'सम्मानं कलयाति घोरगरलं नीचापमानं सुधा।'** सम्मानको घोर विषके समान तथा नीचके द्वारा किये हुए अपमानको अमृतके समान समझो। हे प्रभो! आप ही बचाइये। संसारमें जो मान त्याग देता है उसकी कीर्ति होती है, बड़ाई होती है।

ये महात्मा ऐसे हैं। मान-प्रतिष्ठाको लात मार देते हैं। ये वचन अमृतके समान लगते हैं, ये उसके लिये घातक हैं, मृत्यु हैं, विष हैं। वाह-वाह, महात्मा हैं, योगी हैं, जीवन्मुक्त हैं, दर्शनीय हैं, आपने तो लोगोंके उद्धारके लिये जन्म लिया है। ये

शब्द सुनकर प्रसन्न होता है। सबसे पार होकर यहाँ आकर गाड़ी अटक जाती है। प्रभुसे प्रार्थना करे—हे नाथ! हे दीनबन्धो ! इस विषसे हमें बचाइये। भगवान् कहते हैं—

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥ (गीता २। ६०)

हे अर्जुन! आसक्तिका नाश न होनेके कारण ये प्रमथन स्वभाववाली इन्द्रियाँ यत्न करते हुए बुद्धिमान् पुरुषके मनको भी बलात् हर लेती हैं। विचारवान् पुरुष भी इसमें फँस जाता है।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥ (गीता २। ६७)

जैसे जलमें चलनेवाली नावको वायु हर लेती है, वैसे ही विषयोंमें विचरती हुई इन्द्रियोंमेंसे मन जिस इन्द्रियके साथ रहता है वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुषकी बुद्धिको हर लेती है।

नामके लिये प्राणोंका त्याग कर देता है, कीर्तिके लिये मर मिटता है। कीर्तिसे बढ़कर 'ईर्ष्या' है। दूसरेकी अपनेसे बढ़कर बड़ाई हो रही है, यह सहन नहीं होता। दूसरेकी उन्नति-बड़ाईको देखकर असहनशील होना बड़ा भारी दोष है। कंचन, कामिनी, मान, बड़ाई आदिकी जड़ राग है। ईर्ष्याकी जड़ द्वेष है। राग-द्वेषकी जड़ अहंकार है। अहंकारकी जड़ अविवेक, अज्ञान, अविद्या है। पातंजलयोगदर्शनमें कहा है—'**अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां**' अज्ञान चिज्जड़ग्रन्थि यानी जड़ और चेतनकी एकता-सी प्रतीत होना, आसक्ति, द्वेष और मरणभय—इन पाँचोंकी क्लेश संज्ञा है। इन पाँचोंमेंसे अन्तिम चारका कारण अविद्या है अर्थात् अविद्यासे ही राग-द्वेष आदिकी उत्पत्ति होती है। इनका नाश प्रभुकी शरणसे होता है। भगवान् कहते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ (गीता ७। १४)

यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते

हैं वे इस मायाको उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।

यह सब मायाका ही प्रपंच है। इससे पार जानेका उपाय प्रभुकी शरण ही है। हम महात्माओंके, ईश्वरके, शास्त्रके वचन मानकर इस बातपर विश्वास कर लें कि भगवान् सब जगह हैं। यह विश्वास ही आगे जाकर ईश्वरका दर्शन करानेवाला है। ईश्वर परम दयालु प्रेमी हैं जो उनको चाहता है, उसके लिये हर समय हर जगह हैं। प्रह्लादको विश्वास था, उन्हें भगवान् सर्वत्र प्रत्यक्ष दीखते थे। खम्भेसे प्रभु प्रत्यक्ष प्रकट हो जाते हैं, यह प्रह्लादके विश्वासका फल है। जो प्रभुकी शरण जाता है, प्रभु कभी उसका त्याग करते ही नहीं। उसके सारे कार्य सिद्ध हो जाते हैं, उससे कभी पाप नहीं बनते। यदि उससे पाप होते हैं तो उसका विश्वास कहाँ। उसकी चिन्ता दूर भाग जाती है, उसपर प्रभुकी दया है, उसके आनन्दका ठिकाना ही नहीं है। जो किसी बातके लिये कभी रोता है, वह प्रभुका भक्त ही नहीं, बस प्रभुकी विस्मृतिमें रोना उसके लिये गौरव है। विरह-व्याकुलताका रुदन असली रुदन है, कल्याण करनेवाला है। उसे किसीका भी भय नहीं, प्रभु सर्वत्र मौजूद हैं, भयका कोई स्थान नहीं है। इससे बढ़कर दूसरा मार्ग—प्रभु तो यहाँ मौजूद नहीं दीखते, अप्रकटरूपसे हैं। दूसरा सुगम उपाय यह है कि जो अपनी बुद्धि, विचारमें सबसे श्रेष्ठ मालूम दे उसीके अनुसार जीवन बितायें। यदि श्रद्धा करनेयोग्य कोई महापुरुष मिल जायँ तो इससे भी सुगम उपाय मिल सकता है। फिर तो विलम्ब ही क्या है? हमें विश्वास हो जाय कि ये सच्चे महापुरुष हैं, धोखा नहीं दे सकते, वह हमें गड्ढेमें भी भगवान् हैं यह कह दें तो वहाँ भी भगवान् दीखने लगें, दीवालपर भी प्रभु दीखने लगें। यही परम श्रद्धा है। नेत्रोंसे दूसरी बात दीखती है परन्तु वह कह दें कि यह दूसरी वस्तु है तो उसी समय वही चीज दीखने लगती है। श्रद्धा है, ये कहते हैं इसलिये

विश्वास कर लेते हैं। महात्मापर विश्वास करके हमको न दीखनेपर भी उनकी बात मानकर विश्वास कर लेते हैं। प्रभुको सर्वत्र मान लेते हैं। परम श्रद्धाका स्वरूप इस उदाहरणसे बताया जा सकता है—एक वृक्षको महापुरुष सोनेका बताता है, यह सुनते ही वह वृक्ष सोनेका प्रतीत होने लगे, सब पत्ते पीले दीखने लगें। यह श्रद्धा बहुत ही दुर्लभ है। ऐसी श्रद्धा होते ही तत्काल प्रभुकी प्राप्ति हो जाय। भगवान् कहते हैं—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥ (गीता १२। २)

मुझमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमेश्वरको भजते हैं, वे मुझको योगियोंमें अति उत्तम योगी मान्य हैं।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥ (गीता ६। ४७)

सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मासे मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।

एक बात हमलोगोंको नेत्रोंसे नहीं दीखती, परन्तु किसी दूसरे महापुरुषकी देखी हुई बातपर भी हम विश्वास कर लेते हैं। ऐसे ही महात्मा, शास्त्रके वचनोंपर विश्वास करें कि प्रभु सर्वत्र मौजूद हैं तो थोड़े ही कालमें मुक्ति हो जाती है। यह बात भी हम न मानते हों तो हमारे विवेक, विचारसे जो बात सबसे श्रेष्ठ प्रतीत हो उसके अनुसार चलें तो भी हमारा कल्याण हो सकता है। अगर हम उसके अनुसार न चलें तो यह हमारी मूर्खता ही है। हम अपनी आत्महत्या कर रहे हैं।

❑ ❑

निष्कामभावका क्रम

निष्काम कर्मयोग आरम्भ करनेवाले पुरुषको सर्वप्रथम आसुरी सम्पदाका त्याग कर देना चाहिये।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥ (गीता १६। २१)

काम, क्रोध तथा लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके द्वार आत्माका नाश करनेवाले अर्थात् उसको अधोगतिमें ले जानेवाले हैं। अतएव इन तीनोंको त्याग देना चाहिये।

काम, क्रोध, लोभ, दुर्गुण और दुराचारके त्यागके लिये लक्ष्य रखना चाहिये। काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, ईर्ष्या, चोरी, जारी, अभक्ष्य-भक्षण इत्यादि शास्त्र-निन्दनीय हैं। प्रथम इन सबका त्याग करना चाहिये। इसके बाद कामनाके उद्देश्यसे स्त्री, पुत्र, शरीर, धन आदिके लिये देवताओंकी उपासना, ग्रहोंकी शान्ति, भौतिक सुखके लिये पारमार्थिक कार्य करनेसे बचना चाहिये। जिससे परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है, वह पारमार्थिक कर्म है। भौतिक सुखके लिये परमात्मासे, देवताओंसे प्रार्थना नहीं करनी चाहिये, ब्राह्मण आदि सबकी सेवा इसी उद्देश्यसे करनी चाहिये कि उनके आशीर्वादसे ईश्वरमें हमारा प्रेम हो।

संसारमें पाप करनेवालोंकी अपेक्षा पाप न करनेवाले हजारों दर्जे ऊँचे हैं, उनकी अपेक्षा सकामभाववाले हजारों दर्जे ऊँचे हैं, परन्तु निष्कामभाववाले बहुत ऊँचे हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

प्रवचन-तिथि—मार्गशीर्ष कृष्ण २, संवत् १९९४ (दिनांक २०-११-१९३७), प्रातः, गोरखपुर।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥

(गीता ९। २२, २३)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ। हे अर्जुन! यद्यपि श्रद्धासे युक्त जो सकाम भक्त दूसरे देवताओंको पूजते हैं, वे भी मुझको ही पूजते हैं; किंतु उनका वह पूजन अविधिपूर्वक अर्थात् अज्ञानपूर्वक है।

गीतामें इसका दर्जा नीचा ही बताया गया है। आसक्ति होनेसे ही देवता इत्यादिसे याचना करता है। देवताओंसे नहीं माँगा, परन्तु मनमें जो स्त्री, पुत्र, धन, मान, बड़ाईकी इच्छा रहती है, वह मनुष्यके पतनमें हेतु हो जाती है। ये सब पदार्थ त्याज्य हैं। दुःखरूप हैं, देखनेमें ही सुख प्रतीत होता है।

महर्षि पतंजलिने कहा है—'**परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुण-वृत्तिविरोधः।**' जिह्वाके वशीभूत होकर भोजन करनेपर परिणाममें पेट दुःखता है। सुख समाप्त हो जानेपर उसकी बार-बार स्मृति होनी परिताप है। दूसरेकी उन्नति देखकर जलना भी परिताप है। सुखका संस्कार जाग्रत् होता है, परन्तु मिलता नहीं, यह दुःख है। सात्त्विक-राजसी, राजसी-तामसी, सात्त्विक-तामसी—इन वृत्तियोंका विरोध दुःखदायी है। संसारमें धन बढ़े तो बहुत हानि है। धनकी रक्षा करनेमें, खर्च करनेमें, संग्रह करनेमें, वियोगमें सब प्रकारसे दुःख-ही-दुःख है। माना हुआ ही सुख है। अच्छे पुरुषोंको अपने अधिकारका धन खर्च करना चाहिये। धन बढ़ने न दे—

पानी बाढ़े नावमें घरमें बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिये यही सयानो काम॥

धनके ही अन्तर्गत सारा ऐश्वर्य आ जाता है, धन बढ़नेकी इच्छा करनी, मृत्युकी इच्छा करनी है। यही बात कुटुम्बके विषयमें है। जितना कुटुम्ब बढ़ जाता है उतना ही दु:ख बढ़ जाता है। निष्काम कर्मयोगके मार्गमें चलनेवालेकी यह सब इच्छाएँ शान्त हो जाती हैं। देवताओंसे माँगना हटा, फिर मनमें चाहना भी हटी, इसके बाद शरीरके आरामपर आकर ठहरता है। सोचना चाहिये, यह तो मिट्टीमें मिलनेवाला है। हमारा क्या प्रयोजन है, यह सोचकर शरीरके आरामका त्याग करें। खूब विरक्तिसे रहें। शरीरसे, मनसे, वाणीसे जो कुछ बने, दूसरोंकी सेवा करें। अपने शरीरको लोक-सेवामें अर्पण कर दें। यदि शरीरसे विशेष सेवा न हो पाये तो कम-से-कम दूसरोंसे सेवा न करायें। शौच, स्नान, खान-पान, बिछौना आदिमें दूसरोंसे मदद न लें। प्रार्थना करें कि हे परमेश्वर! मुझे मेरी स्वार्थ सिद्धिके लिये किसीसे याचना न करनी पड़े।

यदि सेवा न करानेसे अपनी स्त्री, नौकर, शिष्यको दु:ख होता हो तो उनके द्वारा सेवा स्वीकार करनेमें दोष नहीं है, परन्तु सेवाके दास न बन जायँ। जितना त्याग हो सके, करें।

यहाँतक तो दोषोंका ही त्याग है, निष्कामभाव नहीं है। यहाँसे निष्काम आरम्भ होता है। यहाँतक तो बुराईका ही त्याग है। अपने शरीरसे कोई भी क्रिया बने तो यही भाव रखें कि इससे दुनियाका क्या लाभ है। स्वाद, शौक, भोग, आराम—इन चारोंका त्याग करें। केवल निर्वाहदृष्टिसे काममें लें। ऐश्वर्य (लक्ष्मी)-का माता तुल्य व्यवहार करें, स्त्रीदृष्टिसे नहीं। माता बालकका पोषण करती है। स्वास्थ्य, शरीरकी रक्षाकी दृष्टिसे कम-से-कम पदार्थोंका सेवन मातृदृष्टि है। वस्त्र, लोकदृष्टि और स्वास्थ्यका खयाल करके पहनें। लोगोंमें उद्वेग न हो, शरीरकी रक्षा हो, वही वस्त्र पहनें। पुरुष-स्त्री अपने शरीरका शृंगार

इस दृष्टिसे करते हैं कि लोग मेरेपर मोहित हों, वह नरककी तैयारी है। इसका परिणाम व्यभिचार है। दूसरेसे घृणा भी न करें।

स्वाददृष्टिसे भोजन करनेका परिणाम रोग है। आसक्ति परमात्माके मार्गसे ढकेल देती है। वैद्यकी दृष्टिसे बचकर स्वादके लिये खाते हैं, स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। भोगदृष्टिमें सब इन्द्रियोंका समावेश है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥ (गीता २।६४)

अपने अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक अपने वशमें की हुई, राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंद्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्तःकरणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है। राग-द्वेषरहित विषय संसर्गका नाम भोग नहीं प्रसाद है।

आरामका विशेष सम्बन्ध त्वचासे है। आरामसे आदमी निकम्मा आलसी, अकर्मण्य हो जाता है। उद्यमशील होना चाहिये। न तो कष्टमय ही जीवन बिताना चाहिये, न आराममय ही। बीचका जीवन बिताना चाहिये। अपने शरीरको अमीरीसे बचाना चाहिये। स्वाद, शौक, आराम, भोग—इन चारोंके लक्ष्यसे विषयभोग भोगता है। इसका परिणाम नरक है।

अभीतक तो निष्काम कर्मकी भूमिका है। हमारे शरीरकी मिट्टी हो जायगी। किसीकी सेवामें लग जाय तो जन्म सफल हो जाय। किसीका भी उपकार हो जाय तो अच्छा, शरीरको लोकोपकारमें लगा दें। लोकोपकारसे मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा प्राप्त होने लगे तो उसका भी त्याग करें। जैसे रुपये, पदार्थ, शरीरका लोकोपकारके लिये त्याग किया। परलोकका भी त्याग करें, बस ईश्वरप्रीत्यर्थ उनकी आज्ञाका पालन करें। स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों कामनाओंका ही त्याग करें।

गेहूँको तीन चलनीसे छाननेसे कूड़ा-करकट अच्छी तरह

साफ हो जाता है। एकसे मिट्टी छनती है, दूसरीसे मोटी-महीन दोनों चीजें छनती हैं। अब मिट्टीके समान कंकड़ रहते हैं उनको या तो पानीसे भिगोकर या बीन-बीनकर निकालें। इसी प्रकार अन्तःकरणमें जो स्फुरणा हो उसे तीन चलनीसे छान लेना चाहिये। पहली मोटी चलनी निःस्वार्थभावकी है। रुपया, आराम आदि मोटी चीज है।

दूसरी महीन चलनीसे सूक्ष्म स्वार्थ, मान-बड़ाई, प्रतिष्ठाकी इच्छाका त्याग करना चाहिये। तीसरी चलनीसे संसारको परमात्मा ही समझकर ज्ञानरूपी विवेक नेत्रद्वारा छाँट दे। यानी संसारके स्थानपर सर्वत्र परमात्माका दर्शन करे। फिर भक्तिरूपी जलसे धोये। तब शुद्ध होता है। प्रेमरूपी जलसे पापरूपी कंकड़ गल जाते हैं। बीन-बीनकर निकालना यानी स्वार्थके लिये स्वार्थका त्याग और परमार्थके लिये परमार्थका त्याग।

परमार्थके लिये परमार्थका त्याग, दृष्टान्त—सत्संगके लिये जानेवाली बसमें सोलह व्यक्तियोंके बैठनेकी जगह है, चौबीस आदमी हैं वहाँ स्वयं न जाकर दूसरोंको भेजना परमार्थके लिये परमार्थका त्याग है। स्वार्थके लिये परमार्थका त्याग नहीं करना है।

परमार्थके लिये परमार्थका त्याग करनेमें भक्ति, ज्ञान किसी भी मार्गसे हानि नहीं है। आत्मज्ञानकी दृष्टिसे सब अपनी आत्मा है। किसीको भी ज्ञान होता है वह अपनेको ही होता है।

पचासमेंसे प्रभु एकको दर्शन देना चाहते हैं। प्रभु मुझको छोड़कर आपकी इच्छा हो उसे दर्शन दे दें, सबका यही उत्तर हो तो प्रभु सबको दर्शन करा दें। यदि पचासों तैयार हो जायँ तो किसीको भी दर्शन न हो। प्रत्यक्ष लाभ है। ऊँचा दर्जा है। त्याग न होना मूर्खता है। जैसे स्वार्थी दूसरोंके स्वार्थके लिये अपने स्वार्थका त्याग नहीं करता वैसे ही यह बात है। भगवान्‌की प्रसन्नतामें ही हमारा हित है। इस लोभसे भी यह त्याग नहीं

करना चाहिये। इससे जल्दी लाभ होगा। ईश्वरके कर्तव्यको आप जितना अपने माथेपर लेते हैं उतनी ही मूर्खता है। ईश्वरका कर्तव्य अपनेपर क्यों लें? यह उत्तरोत्तर निष्कामका दर्जा है। एक भजन करनेकी अच्छी कुटिया है, गंगाके किनारे है, दो आदमी हैं, दोनों ही चाहते हैं। अपनी अपेक्षा दूसरेको देनेसे ईश्वर अधिक प्रसन्न होते हैं। अगर वे नहीं देते तो दोनोंको ही नुकसान है। हमारा ध्यान भगवान्‌में नहीं लगेगा अपितु उससे तो द्वेष पैदा हो जायगा। चाहे भगवान् ही स्वयं मिलते हों, त्याग ही उत्तम है। मान, बड़ाई यह भीतरी स्वार्थ है। दूसरे लोगोंको पता नहीं चलता इसलिये यह सूक्ष्म है। दूसरेका हक छीनना तो प्रत्यक्ष दिखायी देता है, इसलिये यह स्थूल स्वार्थ है। स्वार्थका त्याग ही निष्काम कर्मयोग है। अब आसक्तिके त्यागकी बात आती है।

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥ (गीता २। ६२)

आसक्तिसे कामना उत्पन्न होती है। यह आसक्ति सूक्ष्म है। उदाहरण—दस आदमी एक संस्थामें काम करते हैं। किसीको झाड़ू लगानेका काम, किसीको बहीखाता लिखनेका काम, किसीको बिक्रीका काम दिया गया। झाड़ू लगानेवाला समझता है कि मुझे नीचा काम दिया गया है। प्रत्येक काम आवश्यक है। यह तो व्यवस्था करनेवालेका काम है कि किसको क्या काम दें? ईश्वरने हमारे लिये जो काम नियुक्त किया है उसको अपनी प्रीतिके लिये नहीं, ईश्वरप्रीत्यर्थ करें। न घृणा और न आसक्ति होनी चाहिये। एक आदमीको बहीखाता दिया गया उसने थोड़ा लिखा। मालिक कहता है—बन्द करो—वह कहता है पूरा कर लूँ। नहीं तुम्हारी आसक्ति है, तुमको क्या मतलब है। हमको क्या नहीं दीखता। पूर्ण करनेकी आसक्ति ही दोष है। प्रभुका बुलावा आते ही तैयार रहना चाहिये। अगर ऐसे तैयार हैं तो यमराजका बुलावा नहीं आ सकता।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥ (गीता ६।४)

जिस कालमें न तो इन्द्रियोंके भोगोंमें और न कर्मोंमें ही आसक्त होता है, उस कालमें सर्वसंकल्पोंका त्यागी पुरुष योगारूढ कहा जाता है।

उत्तम-से-उत्तम क्रिया यज्ञ, दान, तप किसीमें भी आसक्ति न हो। किसी भी चीजमें आसक्ति है, वह परमात्मामें ही तो कम हुई। अब आसक्तिके त्यागके बाद सूक्ष्म ममता, सूक्ष्म संकल्प रहते हैं। ये भी जन्म देनेवाले हैं। इनका भी त्याग आवश्यक है।

सूक्ष्म आसक्तिका उदाहरण—मरते आदमीके मनमें कुआँ बनवानेकी इच्छा सूक्ष्म आसक्ति है। यह मनमें आना कि जीवित रहते तो ईश्वरकी भक्ति करते, जीवनमें आसक्ति है। मन धोखा देता है, ईश्वरका तो बहाना है। ईश्वर तो मिलनेको तैयार हैं ही।

सूक्ष्म वासनाका उदाहरण—मरते समय अमुक आदमी आ गया, वह मिलना चाहता है, मेरी तो कोई इच्छा नहीं थी, सम्बन्ध पाकर उत्पन्न हो गयी। यह सूक्ष्म वासना है।

सूक्ष्म संकल्प—एक प्रोग्राममें बँधा हुआ है, मृत्यु आ गयी। मनमें यह सूक्ष्म संकल्प है कि ९.३० बजे घर जाना है और ८.३० बजे मृत्यु हो गयी तो मुक्ति नहीं होगी, क्योंकि ९.३० बजे किसी-न-किसी रूपमें वहाँ जाना पड़ेगा। सत्ता और आसक्तिको लेकर जो संकल्प है वही संकल्प है, फुरणा नहीं। भीतरमें कोई इच्छा नहीं है, चलते-चलते जहाँ मृत्यु आ जाय, वहीं रुक जाय। हर समय भगवान्‌में चित्त है—

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः॥ (गीता ७।३०)

जो पुरुष अधिभूत और अधिदैवके सहित तथा अधियज्ञके सहित (सबका आत्मरूप) मुझे अन्तकालमें भी जानते हैं, वे

युक्तचित्तवाले पुरुष मुझे जानते हैं अर्थात् प्राप्त हो जाते हैं।

उसका न जानना किसी भी कालमें नहीं है। अचानक एक क्षणमें मृत्यु आकर प्राप्त हो जाय तो उसका मुझसे वियोग नहीं है। क्रिया दीखती है। आसक्ति नहीं है। कोई भी भावी प्रोग्राम बनाना भावी जन्मको निमन्त्रण देना है। वह महात्मा तो हर समय टिकट लेकर तैयार हैं। प्लेटफार्मपर गठरी-मुटरी लिये तैयार हैं। कभी गाड़ी आये, बैठनेके लिये तैयार हैं। हर समय मृत्युकी प्रतीक्षामें हैं।

सूक्ष्म ममता—मरते समय किसीसे मिलनेकी कोई इच्छा नहीं है। विशेष आग्रह करके स्त्री, बालक आ गये, रोने लग गये। उनको देखकर अगर आँसू आ गये तो सूक्ष्म ममता है। अगर रोना नहीं आया, थोड़ा मनमें दुःख आ गया, पहले तो नहीं था, परन्तु उनके प्राप्त होनेपर उनके दुःखको देखकर आ गया। यह सूक्ष्म ममता है।

सूक्ष्म अहंकार—जहाँ ममता है वहाँ तो अहंकार है ही। ममता कार्य है, अहंकार कारण है। बात कर रहे हैं। कोई मरनेकी चिन्ता नहीं है। सब लौकिक-पारमार्थिक काम कर लिया। परमात्माकी दया है, स्थिति ठीक है। प्राण जायँ तो कोई आपत्ति नहीं है। मैंने अपना कर्तव्य कर लिया, यह तो पूरा अहंकार है, परन्तु यह बात उसके मनमें नहीं है मनमें अहंकार नहीं है। ऊँचे दर्जेका साधक है। परमात्माके भजन-ध्यानमें स्थित है। दूसरे लोग कह रहे हैं कि इसने अपना जीवन सफल कर लिया है। वह उनको रोक रहा है, यह बड़ाई मत करो, भगवान्‌का भजन करो। फिर लोग कह रहे हैं—आपको तो सुनकर दुःख हो रहा है। उचित तो यही है, परन्तु हम उऋण होनेके लिये कह रहे हैं। हम आपके कृतज्ञ हैं। आप-से पुरुष तो आप ही हैं, आप जा रहे हैं। आपकी जगह खाली हो गयी। अगर ये शब्द भी उसको

प्रिय लग रहे हैं तो यह सूक्ष्म अहंकार है।

ज्ञानका मार्ग है तो खाली किसकी हो गयी। भक्तिमार्गमें भी आनन्द-ही-आनन्द है। बड़ाईके ये शब्द क्यों प्रिय लगें। बड़ाईके शब्द बुरे मालूम दें तो भी सूक्ष्म अहंकार है, यह और भी सूक्ष्म है। द्वेष तो रहा नहीं फिर बुरा किसे मालूम दे।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥

(गीता १२। १७)

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है—वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है।

दीवालको कोई विकार नहीं होता है चाहे कोई गाली दे या प्रशंसा करे। साधकको भी दीवालकी तरह बनना चाहिये।

❑ ❑

ध्यानका विषय

महर्षि पतंजलिने साधनमें नौ विघ्न बताये हैं, जिनमें प्रधान दो हैं—आलस्य और स्फुरणा। इनका ही विस्तार—'**व्याधिस्त्यान-संशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः॥**' सूत्र १। ३० में है।

(१) **व्याधि**—रोग, बीमारी।

(२) **स्त्यान**—(अकर्मण्यता)-साधनमें प्रवृत्तिका अभाव।

(३) **संशय**—क्या करना, क्या न करना यह संशय।

(४) **प्रमाद**—मनकी व्यर्थ चेष्टा।

(५) **आलस्य**—निद्राका पूर्व रूप।

(६) **अविरति**—विषयोंमें प्रेम होना, वैराग्य न होना।

(७) **भ्रान्तिदर्शन**—चित्त परमात्माके पास न ठहरे।

(८) **अलब्धभूमिकत्व**—चित्त ठहरे नहीं।

(९) **अनवस्थितत्व**—बाहरका ज्ञान बिलकुल न रहे।

चित्तकी विक्षिप्त और मूढ—ये दो अवस्था ही सब जीवोंको बाँधनेवाली है। दो प्रधान दोष हैं। उनको हटानेके दो उपाय अभ्यास और वैराग्य बताये गये हैं। यही वसिष्ठजीने भगवान् रामको, गीतामें भगवान्‌ने अर्जुनको, सांख्यदर्शनमें कपिलजीने बताये हैं। अन्य भी बहुत-से उपाय योगदर्शनमें एवं भगवान्‌ने बताये हैं। निद्राके लिये चार कारण बताये हैं। ज्यादा परिश्रमके अन्तमें, अजीर्ण रहता हो, रातको निद्रा पूरी न होती हो या डटकर भोजन करनेसे निद्रा आती है। साधकको कम-से-कम ६ घंटे सो लेना चाहिये। ये चार कारण नींदके लिये प्रसिद्ध हैं।

प्रवचन-तिथि—मार्गशीर्ष कृष्ण २, संवत् १९९४ (दिनांक २०-११-१९३७), दोपहर, गोरखपुर।

जैसे कुनैनसे बुखार रुकती है नाश नहीं होती। असली उपाय दूसरा है। उसी प्रकार निद्रा—इन चार उपायोंसे रुकती है। सर्वथा नहीं मिटती। असली औषधि **'ईश्वरप्रणिधानाद्वा'**—ईश्वरमें, साधनमें प्रेम है। सबसे बढ़कर उपाय प्रेम है। दूसरा उपाय मृत्युका भय है। रात्रिमें साँपको बिलमें घुसते देख लिया, घरमें चोर घुसे देख लिये, धर्मशालामें प्रेत हैं यह भय हो गया तो नींद नहीं आती। तीसरा उपाय—प्रेमसे नीचा, भयसे ऊँचा है बुद्धिको सात्त्विक काम सौंप दें। पुस्तकको लेकर विचार करें या बैठे-बैठे विचार करें। भगवद्विषयक सात्त्विक विचार हुआ, बुद्धिमें जागृति हुई। विचार करें—समय पेट भरनेमें ही गया, ३० वर्ष बीत गये, भोग-विलासमें गये। पशुका-सा ही समय गया। आजसे लेकर मृत्युतक सारा समय भगवान्‌के लिये ही लगाना चाहिये। ईश्वर, धर्म, परलोक, माया सब क्या हैं। हम पागलकी तरह फिर रहे हैं। सब बातोंपर विचार करना चाहिये। विक्षेपके नाशके लिये नामजप और प्राणायाम करने चाहिये। प्राणायामका विस्तार—स्तम्भवृत्ति, बाह्य-आभ्यन्तरवृत्ति। जप कई प्रकारके हैं, जैसे ध्वनिका जप, नाड़ीका जप, श्वासका जप। सबसे बढ़कर बात ध्यान लगानेवाले पुरुषोंके पास बैठकर ध्यान लगावें। वे हमको दिखलायें और हमारा ध्यान लगवानेकी कोशिश करें। वे अगर न मिलें तो एकान्तमें जाकर बैठें। इष्टका चित्र सामने रखें। उस चित्रके नेत्र हमारे नेत्रोंके बराबर हों—न ऊँचा न नीचा। चरणोंसे आरम्भ करके मुखपर अपने नेत्र टिकायें, फिर नेत्रोंसे मिला दें। प्रभुमें दया, प्रेम, समता सब नेत्रोंमें देखने लगें। जैसे मकानकी रोशनी झरोखेमेंसे दीखती है, ऐसे ही नेत्रोंसे महान् ज्ञान, प्रकाश, प्रेम देख रहा हूँ। मुझमें ये आ रहे हैं। प्रभुकी मूर्तिकी चेतनताको देखें। प्रभु अब प्रकट होंगे, हमें दर्शन देंगे, बस प्रसन्नता होने लगी। मूर्तिमें चंचलता दीखने लगी, प्रभु प्रकट

हो गये। साक्षात् साढ़े तीन हाथके शरीरसे आकर मुझे मिलेंगे ऐसे भावना करते-करते कभी साक्षात् दीखने लगेंगे। हमारी भावना दृढ़ होनेसे भगवान् साक्षात् मिल जायँगे।

निराकारका दूसरा तरीका है—ऐसा ध्यान नेत्रोंको खोले हुए होता है, नेत्रोंसे जल आने लगता है। कभी बन्द, कभी खुले हुए नेत्रोंसे ध्यान करता रहे। बाहर और अन्दर दोनों जगह जहाँ आपको सुगम प्रतीत हो ध्यान कर सकते हैं। ध्यान करते समय फुरणा आये तो लगातार नामका जप शुरू कर दें, आलस्य आये तो ध्यानविषयक पुस्तक पढ़ने लगें। फिर सात्त्विकता आये तब ध्यान करने लगें। जितनी प्रसन्नता, शान्ति होगी उतना ही विक्षेपका नाश होगा। प्रभुमें चेतनता, ज्ञान देखे और देख-देखकर प्रसन्नता, आनन्दमें मुग्ध होता जाय।

निराकारका ध्यान—सारा संसार निराकार ब्रह्मका संकल्प है। ब्रह्मने संकल्प हटा दिया, बस संसार हट गया। ब्रह्म-ही-ब्रह्म रह गये। भगवान्का स्वरूप ही ज्ञान और आनन्द है। अपार आनन्द-ही-आनन्द है। क्रिया, चंचलता सबका अभाव पुनः-पुनः आनन्दकी आवृत्ति है।

शान्त आनन्द, अचल आनन्द, ध्रुव आनन्द, नित्य आनन्द, बोधस्वरूप आनन्द, ज्ञानस्वरूप आनन्द, परम आनन्द, महान् आनन्द, अनन्त आनन्द, सम आनन्द, अचिन्त्य आनन्द, चिन्मय आनन्द, पूर्ण आनन्द, अपार घन आनन्द, सत् आनन्द, चेतन आनन्द, असीम आनन्द इस प्रकार विशेषण लगाकर आनन्दको विशेष्य बना लें। एकमात्र आनन्द-ही-आनन्द परिपूर्ण है। आनन्दसे भिन्न अन्य कोई वस्तु ही नहीं है। इस प्रकार मनका निरोध हो जाता है। ध्येय निर्गुण ब्रह्म है, ध्यान करनेवाला मैं, ध्यान क्रिया है, तीन चीज हैं। ऐसा ध्यान करते-करते मनन हुआ। मन विलीन हो गया। परमात्माका परोक्ष ज्ञान हुआ।

एकतार ध्यानमें स्थित है। उसके बाद त्रिपुटीकी एकता हो जाती है। एक ध्येय वस्तु रह जाती है। ब्रह्म ही रह जाता है। जब होश आता है, बड़ा आनन्द होता है। फिर ध्यानमें जाकर बैठते हैं। ऐसा होते-होते समाधि हो जाती है। यह सम्प्रज्ञात योग हुआ। यह सबीज समाधि है। इसके बाद निर्बीज समाधि होती है। निर्बीजसे जब वह जागता है, तब वह वही रह जाता है। मन-बुद्धि लौटकर शरीरमें आते हैं। निराकारसहित साकारका ध्यान कैसे करें। परोक्ष ज्ञान हो गया, बोधके रूपमें भगवान् प्रकट हुए। ज्ञान-ही-ज्ञान उसमें दूसरी कोई वस्तु नहीं रहती। फिर भगवान् तेजके रूपमें प्रकट हुए। दिव्य प्रकाश उस प्रकाशका पुंज हुआ। वह मूर्तिमान् हो गया। विष्णुके उपासक उसे शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी प्रभुके रूपमें देखता है। आह्लाद, प्रेम, आनन्दकी लहरें उठने लगीं। सारे शरीरमें रोमांच, अश्रुपात होने लगे। आनन्दमय मूर्ति, वही निर्गुण आनन्द ही साक्षात् मूर्तिमान् हो गया। अद्‌भुत अपार आनन्दका समुद्र उमड़ पड़ा, उसमें मैं डूब गया। चिन्मय मूर्ति है। उनका शरीर दिव्य, चन्द्रमाकी तरह तेजोमय है। छूते ही आनन्दकी लहरें उठने लगीं।

❑ ❑

नवधा भक्ति

भगवान्‌के नामका जप, कीर्तन, भगवान्‌की सेवा करना, उनकी आज्ञाका पालन करना भक्ति है। भगवान्‌ने कहा भी है—

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥

वही मेरा प्यारा सेवक है जो मेरी आज्ञाका पालन करता है। वही सेवक है, वही भक्त है और वही भगवान्‌को प्यारा है।

नारदभक्तिसूत्रमें कहा है—ईश्वरमें परम अनुराग ही भक्ति है। भक्ति दो प्रकारकी होती है—वैधाभक्ति और पराभक्ति। वैधाभक्तिका फल है पराभक्ति। भागवतमें नौ तरहकी भक्ति बतायी गयी है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(७।५।२३)

भगवान्‌के गुण-लीला-नाम आदिका श्रवण, उन्हींका कीर्तन, उनके रूप-नाम आदिका स्मरण, उनके चरणोंकी सेवा, पूजा-अर्चा, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। इस नौ प्रकारकी भक्तिका फल प्रेमलक्षणा भक्ति है। प्रेम ही भक्तिकी अन्तिम अवस्था है। भगवान्‌ने कहा है—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

(गीता ११।५४-५५)

हे परंतप अर्जुन! अनन्य भक्तिके द्वारा इस प्रकार चतुर्भुजरूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।

प्रवचन-तिथि—दिनांक ६-५-१९४५, दोपहर, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

जो पुरुष केवल मेरे ही लिये कर्तव्य-कर्मोंको करनेवाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें वैरभावसे रहित है—वह अनन्यभक्तियुक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।

संसारसे राग-द्वेषका त्याग करके भगवान्‌की शरण होकर भगवान्‌का भक्त बनना चाहिये। भगवान्‌ने संक्षेपमें यह लक्षण बतला दिये, विचार करके देखा जाता है, तो सब एक ही साँचेमें ढल जाते हैं। भक्तिके बारेमें भगवान् कहते हैं—

मच्चित्ता मद्‌गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

(गीता १०। ९—११)

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं। उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं। हे अर्जुन! उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये उनके अन्तःकरणमें स्थित हुआ मैं स्वयं ही उनके अज्ञानजनित अन्धकारको प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपकके द्वारा नष्ट कर देता हूँ।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ (गीता ९। ३४)

मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्माको मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा।

इसीको कुछ दूसरे शब्दोंमें कहते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥ (गीता १८। ६५)

हे अर्जुन! तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है।

भक्तिमें मन, प्राण, इन्द्रिय सबसे भजन होता है और उसका फल है परमात्माकी प्राप्ति। यहाँ आकर प्रेम और भक्ति दोनों एक ही हो जाते हैं। नामजप भक्तिका अंग है। कीर्तन भक्तिके अन्तर्गत ही भगवान्‌के नामका जप है। नौ प्रकारकी भक्तिमें एक प्रकारकी भी धारण कर ले तो भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। सभी कर ले तो बात ही क्या है। जिस-किस प्रकारसे भगवान्‌से प्रेम हो वह उपाय करना चाहिये। हमें सब प्रकारसे भगवान्‌की शरण होकर भगवान्‌को भजना चाहिये। यही सर्वोत्तम भक्ति है।

श्रवण-भक्तिसे राजा परीक्षित्‌का कल्याण हो गया। यदि कहो कि वे तो उच्चकोटिके महापुरुष थे। धुन्धुकारी महापापी था, उसका भी श्रवण-भक्तिसे उद्धार हो गया। प्रश्न उठता है कि फिर हमलोगोंका कल्याण क्यों नहीं होता। क्या हम उससे भी ज्यादा पापी हैं। बात यह है उसकी श्रद्धा थी। श्रद्धाके कारण उसका उद्धार हो गया। वहाँ और भी बहुत-से श्रोता थे, सबका कल्याण नहीं हुआ। आप पूछें कि श्रद्धा कैसे हो। श्रद्धा परमात्माकी दयासे होती है। परमात्माकी दया तो है ही, फिर श्रद्धा क्यों नहीं होती? इसका कारण यह है कि हम श्रद्धालुओंसे

भी मिलते हैं और अश्रद्धालुओंसे भी। अश्रद्धालुओंसे मिलते हैं तो वे श्रद्धा घटा देते हैं। श्रद्धालुओंसे मिलते हैं तो श्रद्धा बढ़ जाती है। जब-जब नास्तिक पुरुषोंका संग मिले तो हमें प्रभुसे प्रार्थना करनी चाहिये। अन्तःकरण शुद्ध हो जानेसे श्रद्धा स्वतः ही हो जाती है। गीतामें भगवान्‌ने बताया है—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥ (१७।३)

हे भारत! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है वह स्वयं भी वही है।

अन्तःकरणकी शुद्धिके बहुत-से उपाय बताये गये हैं; किन्तु इस घोर कलिकालमें सबसे बढ़कर उपाय है भगवान्‌के नामका जप। भगवन्नामकी महिमा नित नयी है। केवल सुननेमात्रसे कल्याण हो जाता है। श्रवण-भक्ति सत्संगसे मिलती है, सत्संगसे भगवान्‌में प्रेम हो जाता है—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥
तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

महात्माओंके संगकी ऐसी महिमा बतायी गयी है। सत्संगकी महिमा कहें, चाहे श्रवण-भक्तिकी महिमा कहें एक ही बात है। गीतामें भगवान् कहते हैं—

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥ (४।२८)

कितने ही अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतोंसे युक्त यत्नशील पुरुष स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ करनेवाले हैं। भगवान्‌ने यह भी कहा है कि जो गीताका पाठ करता है उसके द्वारा मैं ज्ञानयज्ञसे पूजित होता हूँ। ज्ञानयज्ञ सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ है और भी कहते हैं—

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥ (गीता १३। २५)

परन्तु इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्दबुद्धिवाले पुरुष हैं, वे इस प्रकार न जानते हुए दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसार-सागरको निःसन्देह तर जाते हैं।

महात्माओंसे सुनकर उसके परायण हो जाते हैं वे भी तर जाते हैं। हम भगवान्‌के गुण-प्रभावकी बातें सुननेके समय अपने-आपको भुला दें। उस समय चाहे प्राण भी चले जायँ। यह एक नम्बर बात है। इसी प्रकार केवल कीर्तनमात्रसे भी कल्याण हो जाता है। भगवान्‌ने कहा है कि इस गीताशास्त्रका जो प्रचार करता है उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला कोई नहीं है। जो भगवान्‌के भावोंका प्रचार करता है, भगवान् उसके ऋणी हो जाते हैं। भगवान्‌के नामका जप, गुणोंका कीर्तन, भगवान्‌के तत्त्व-रहस्यका कीर्तन भक्तिके अन्तर्गत है। केवल भजनमात्रसे कल्याण हो जाता है। जैसे गोकर्णजीने भगवान्‌की भक्तिका कीर्तन किया, उनका कल्याण हो गया। इस कलिकालमें गौरांग महाप्रभुने भगवान्‌के नामका कीर्तन किया, उनके द्वारा कितनोंका कल्याण हो गया। वे कीर्तनभक्तिके आचार्य माने गये। भक्त प्रह्लाद तो कीर्तनभक्तिके प्रचारक ही थे। कैसा भी पापी हो भगवान्‌के नाम-कीर्तनसे कल्याण हो जाता है। हरिदासजी यवन थे, उनका कल्याण हो गया। धोबी एवं जगाई-मधाई आदि पापियोंका कीर्तन कराकर गौरांग महाप्रभुने उद्धार कर दिया। सारे शास्त्र कहते हैं—

राम नाम रटते रहो, जब लग घटमें प्राण।

यदि कहो कि कर लेंगे, अभी तो बालक हैं। ध्यान रखना चाहिये कि क्या जरूरी है कि बूढ़े होंगे। इसलिये अभीसे अभ्यास करना चाहिये।

दो बातनको भूल मत जो चाहत कल्यान।
नारायण एक मौतको दूजे श्रीभगवान॥

दो बातोंको हर वक्त याद रखना चाहिये, एक तो नारायणको और एक मौतको। मौतको याद रखनेसे भजन ज्यादा होगा। एक भक्त कहते हैं ***'केशव केशव कूकिये न कूकिये असार।'*** हर वक्त उस भगवान्‌को आवाज लगानी चाहिये। असार संसारके लिये कभी आवाज नहीं लगानी चाहिये।

सुत दारा अरु लक्ष्मी पापीके भी होय।
संतमिलन अरु हरिभजन दुर्लभ जगमें दोय॥

सत्संग और भजन, दो बात ही दुर्लभ हैं। सत्संग भी भजनके लिये ही है। भजन नहीं हुआ तो सत्संगसे क्या लाभ, भजन ही सबसे बढ़कर है।

आज कहे मैं काल भजूँ काल कहे फिर काल।
आज कालके करत ही अवसर जासी चाल॥
काल भजंता आज भज आज भजंता अब।
पलमें परलय होयगी बहुरि भजेगा कब॥

इस प्रकार भगवान्‌के नामके विषयमें हजारों श्लोक, छन्द भरे पड़े हैं। चाहे दिनभर नामकी महिमा गाते ही रहो। विल्वमंगल कैसे पापी थे। वे कहते हैं—***'मो सम कौन कुटिल खल कामी।'*** सूरदासजी रात-दिन भगवान्‌के लिये रोया करते थे। एक दिन रास्तेसे जा रहे थे, रास्तेमें कुआँ आ गया। वे कुएँमें न गिर जायँ; इसलिये भगवान्‌ने आकर उनसे कहा बाबा आगे कुआँ है और अपनी अंगुली पकड़ा दी। सूरदासजीको उनकी अंगुली कोमल मालूम दी, उन्होंने उनकी कलाई पकड़ ली। भगवान् बाँह छुड़ाकर जाने लगे तब उन्होंने कहा—

हाथ छुड़ाकर जात हो निबल जानके मोहि।
हिरदे ते जब जाहुगे पुरुष बदौंगो तोहि॥

तब भगवान् प्रकट हो गये, उन्होंने नेत्र दे दिये। भगवान्ने कहा सूरदास तुम्हें जो चाहिये सो माँग लो। सूरदासने कहा—मुझे तो अंधा बना दें। तीसरी भक्ति है—स्मरण भक्ति। भगवान्ने कहा है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(गीता १२। ६-७)

जो मेरे परायण रहनेवाले भक्तजन सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वरको ही अनन्य भक्तियोगसे निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं। उन मुझमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ।

कबीरदासजीने कहा है, जैसे पनिहारी अपने मटकेकी तरफ ध्यान रखती है ऐसे भगवान्का ध्यान रखना चाहिये। भगवान्का स्मरण करना, चिन्तन करना, सब भक्तिके अन्तर्गत है। हमारे मनका विषय भगवान्को बनाना चाहिये। इस प्रकार करनेसे बड़े-बड़े पापियोंका उद्धार हो गया। चौथी भक्ति है—पादसेवन, भगवान्की सेवा करना। भगवान्के चरणोंकी धूलि सिरपर धारण करना पादसेवन भक्ति है। भगवान् वनको जा रहे हैं, केवटसे

कहा, नौका लाओ। केवटने कहा कि पहले आप अपने चरणोंको धुलवा लें तब नावमें चढ़ाऊँगा, कहीं मेरी नौका स्त्री बन गयी तो मैं दुःख पाऊँगा। मेरी आजीविकाका साधन समाप्त हो जायगा। भगवान् लक्ष्मणकी तरफ देखकर संकेतसे समझाते हैं कि देखो कैसा प्रेमी है। तब भगवान्ने कहा कि अच्छा जल्दी धोओ। तब अच्छी तरह चरण धोकर अपने पितरोंको पहले पारकर फिर भगवान्को पार किया।

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥

यह पादसेवन भक्ति है। श्रीभरतजी चरण-पादुकाकी पूजा करते हैं। चरण-पादुकाके ऊपर छत्र, चँवर करते हैं, जाते हैं तो मस्तकपर धारण करके जाते हैं। ऐसा उत्तम भाव है।

अर्चन भक्ति—भगवान्का पूजन। भगवान् कहते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ (गीता ९। २६)

जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ। द्रौपदीने केवल सागका पत्ता खिलाया। गजेन्द्रके यहाँ पुष्प ग्रहण किया, भीलनी जो जातिकी नीच थी; वहाँ जाकर बेर खाये। जब भीलनी-जैसीका उद्धार हो सकता है; फिर जो रोज प्रेमसे पूजा करें उनका क्यों नहीं हो सकता; किन्तु हमलोग भक्तिपूर्वक तो देते नहीं, बिना भक्तिके भगवान् खाते नहीं। दुर्योधनके यहाँ भगवान् पहुँचे भोजन नहीं किया। दुर्योधनके पूछनेपर भगवान्ने कहा कि भूखसे व्याकुल तो मैं नहीं हूँ और प्रेम तेरेमें नहीं है। दोके सिवाय कोई कारण नहीं है जिससे भोजन स्वीकार किया जाय। भगवान् न तो जाति देखते

हैं, न गुण देखते हैं न आचरण देखते हैं, वे तो केवल प्रेम देखते हैं—'**भक्तिप्रियो माधवः।**'

वन्दन भक्ति—केवल नमस्कारसे कल्याण हो जाता है। अक्रूरजी भगवान्‌को कंसकी आज्ञासे लेने आते हैं, आकर साष्टांग प्रणाम किया। भगवान्‌ने कहा कि आप तो मेरे चाचा लगते हैं, किन्तु अक्रूरजी तो सम्बन्धको लेकर प्रणाम नहीं करते, वे तो भगवान् समझकर प्रणाम करते हैं। शास्त्रोंमें कहा है—

एकोऽपि कृष्णस्य कृतप्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥

(महाभारत)

भगवान् कृष्णको एक बार किया हुआ प्रणाम दस अश्वमेध यज्ञोंके अवभृथ स्नानके तुल्य है। दस अश्वमेध यज्ञ करनेवाला तो लौटकर भी आता है किन्तु कृष्णको प्रणाम करनेवाला लौटकर नहीं आता।

दास्य भक्ति—केवल दास्य भक्तिसे हनुमान्‌जी आदि तर गये। तुलसीदासजी कहते हैं—'***सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।***' सेवक और स्वामीके भावके बिना संसार-सागरसे तरना कठिन है। ऐसा समझकर भगवान्‌की सेवा करनी चाहिये।

भगवान् कहते हैं, वही मेरा सेवक है, वही मेरा प्यारा है जो मेरी आज्ञाका पालन करता है।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(गीता ९। २९)

मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ। न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है; परन्तु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें

हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ। यह दास्य भक्ति है। यह बहुत उत्तम भाव है।

आठवीं भक्ति है **सख्य भक्ति**—गुह-जैसे तर गये, सुग्रीव-जैसे तर गये, फिर अर्जुन-जैसे तर जायँ, उनकी तो बात ही क्या है। ग्वालबाल भगवान्‌पर चढ़ते, खेल खेलते, आपसमें भोजन करते समय माँग-माँगकर लेते। कहींपर माँगनेसे भी नहीं मिलता। सुदामा पेड़पर बैठा चना चबाता है। भगवान् कहते हैं क्या खाते हो? सुदामाने कहा कुछ नहीं। उनका भी उद्धार कर दिया, क्योंकि सुदामा भगवान्‌के सखा थे। सुग्रीवको भगवान्‌ने कहा—

सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥

भगवान्‌ने सीताका वियोग भुला दिया। पहले सुग्रीवका दुःख दूर किया; क्योंकि भगवान् कहते हैं—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥

अपने प्यारे मित्रका दुःख देखकर जो दुःखी नहीं होता, वह इतना बड़ा पापी है कि उसके दर्शनसे बड़ा भारी पाप लगता है। आपत्तिकालमें सौ गुना प्रेम करना चाहिये—

बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥

भगवान्‌से बढ़कर कौन होगा, वे ही यह सब सिखा रहे हैं। लक्ष्मणके बाण लगा, विलाप करते हैं। सीताके वियोगका दुःख नहीं है, लक्ष्मणके मरनेका दुःख नहीं है, दुःख है विभीषणसे मित्रता हो गयी, किन्तु उसका दुःख दूर नहीं किया जा सका। गुह जो नीची जातिके थे, उनसे भगवान् हृदय लगकर मिलते हैं। इसी प्रकार **आत्मनिवेदन भक्ति** है। बलि सब कुछ भगवान्‌के अर्पण करके मुक्त हो गये। भगवान्‌ने उनका सब कुछ दो पैरमें नाप लिया और पूछा—बता तीसरा चरण कहाँ रखूँ। बलिने

कहा—तीसरा चरण मेरे सिरपर रखिये। भगवान् प्रसन्न हो गये। यह नवधा भक्ति संक्षेपसे बतायी गयी है। इनके फलस्वरूप प्रेमलक्षणा भक्ति प्रकट होती है। उस समय न तो किसीसे डरता है, न मनमें दूसरी इच्छा रहती है।

न लाज तीन लोककी न वेदको कह्यो करे।
न संक भूत प्रेतकी न देव यक्षसे डरे॥
सुने न कान औरकी द्रसै न और इच्छना।
कहे न मुख और बात प्रेम भक्ति लक्षणा॥

यह प्रेमलक्षणा भक्तिके लक्षण हैं। यह भक्ति प्रकट होनेसे भगवान् बड़े प्रेमसे मिलते हैं।

❑ ❑

प्रेमके साधनका क्रम

चाहे साकारका उपासक हो चाहे निराकारका, नामजप और स्वरूपका ध्यान, एकान्तवास और सत्संग ये सबके लिये सहायक होते हैं। आरम्भकी अवस्थामें जप और सत्संग होता है। इन दोनोंकी प्रारम्भसे अन्ततक आवश्यकता है। संसारसे वैराग्य और ईश्वरमें अनुराग इस उद्देश्यको रखकर साधन करना चाहिये। शनैः-शनैः वृत्तियों और इन्द्रियोंको संसारसे हटाता जाय और भगवान्में लगाता जाय। इन्द्रियोंसे भगवान्की पूजाकी क्रिया करें। भगवान्के विग्रहकी पूजा या मानसिक पूजा और भगवान्से एकान्तमें बैठकर मनसे ही वार्तालाप करें। ऐसा भाव रखें कि हम चलते हैं तो भगवान् साथमें चलते हैं, खाते हैं तो साथमें खाते हैं, बैठते हैं तो साथ बैठते हैं, यह काम मनको दे देवें। रात-दिन भगवान्से मानसिक वार्तालाप करें। बाहरकी इन्द्रियोंको भी भगवान्में लगायें। मनको भी भगवान्में लगायें। यह प्रेमका मार्ग है, दूसरा मार्ग व्याकुलताका है या यों कहें—एक हँसनेका मार्ग है और दूसरा रोनेका मार्ग है, एक विरह-व्याकुलताका और दूसरा आमोद-प्रमोदका मार्ग है। भगवान्की लीला हो रही है उनकी सारी क्रिया आमोदको देनेवाली है।

भगवान्को साथमें रखकर सारी चेष्टा करनी चाहिये। भगवान् प्रेमास्पद हैं मैं उनका प्रेमी हूँ। भगवान्के मुकाबलेमें संसारको कोई कीमत न दे। भजन कर रहा है, सांसारिक हानि हो रही है तो कोई परवाह नहीं। यही इच्छा कि भगवान्का भजन-ध्यान बनता रहे। भगवान्के विषयकी, कीर्तन आदिकी आवाज सुनी तो मुग्ध हो गया। भगवान्के नाम और गुणोंका कीर्तन वाणीसे भी करे, मनसे भी करे। जप श्वाससे भी करे,

---

प्रवचन-तिथि—दिनांक ६-५-१९४५, सायंकाल, टीबड़ी, स्वर्गाश्रम।

वाणीसे भी करे। सुननेके समय मनको सुननेमें लगा दे, एकान्तमें बैठे तो सारा काम मनसे ही करे। एकान्तमें इस श्लोकके अनुसार साधन करे—

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥ (गीता ६। १४)

ब्रह्मचारीके व्रतमें स्थित, भयरहित तथा भलीभाँति शान्त अन्तःकरणवाला सावधान योगी मनको रोककर मुझमें चित्तवाला और मेरे परायण होकर स्थित होवे। निर्भय होकर बैठे, परमात्माका ही मनन करे। मनको परमात्मामें लगाकर उनमें ही जोड़ दे, परमात्माकी शरण हो जाय। व्यवहार-कालमें इस प्रकार बर्ताव करना चाहिये—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥ (गीता १०। ९)

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं। ध्येय यही रखे कि मेरा जीवन भगवान्के लिये ही है। फालतू बातोंमें समय नहीं बिताये। यह श्लोक भी व्यवहार-कालका है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ (गीता ९। ३४)

मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्माको मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा।

एकान्तमें भी इसे काममें ला सकते हैं। इस प्रकारसे शुरू करें—आमोद-प्रमोदके मार्गसे चले तो बार-बार प्रसन्न हो,

रोमांच हो। विरह-व्याकुलताका मार्ग हो तो या तो भरतजीका या गोपियोंका अनुकरण करे। भरतजी महाराज प्रतीक्षा कर रहे हैं, रो रहे हैं, गोपियाँ रो रही हैं। इस प्रकार चिन्तातुर होकर विलाप करे, स्तुति करे, प्रार्थना करे, जैसे नववधूका पतिसे पहले प्रेम हो चुका है, फिर पतिसे मिलनेकी चेष्टा करती है। ऐसे प्रभुसे मिलनेकी चेष्टा करे। अत्यन्त व्याकुल हो जाय। विलम्ब सहन न हो—पुरुषोंमें भरतजीका, स्त्रियोंमें गोपियाँ, रुक्मिणीजी तथा सीताजीका अनुकरण करना चाहिये। पहले तो अनुकरण होता है, फिर असली भाव हो जाता है। भगवान्‌के न आनेके कारण समय-समयपर रोना आये, समय-समयपर अश्रुपात हो, रोमांच हो, हृदय भी गद्‌गद हो जाय, कभी-कभी भगवान्‌को प्रेमपूर्वक हठसे उलाहना देने लगे कि आप क्यों नहीं आते? तड़पन होने लगे, जैसे मछलीकी जलके वियोगमें होती है। रोये, स्तुति करे, विनय करे, कभी विनोदसे यह भी कल्पना कर ले कि सुनते हैं आप दयालु हैं, यह दयालुताकी कौन-सी बात है। आप तो अन्तर्यामी हैं। मैं क्या करूँ, मरूँ या गड़ूँ, चलते-फिरते, सोते-जागते इसी बातकी लगन लग जाय, जैसे ऋणी आदमीको चैन नहीं पड़ता। विचार करे कि अभीतक कुछ भी नहीं हुआ है। अभीतक भगवान् नहीं आये हैं, कब आयेंगे। भगवान्‌के सिवाय और कुछ अच्छा ही न लगे। कोई आदमी फालतू बात बनाये तो वहाँसे उठकर चल दे। भगवान्‌के सिवाय दूसरी बात अच्छी लगे ही नहीं। खाना, पहनना सब भाररूप हो जाय, शरीर तथा अन्य सबसे बेपरवाह हो जाय। कंचन, कामिनी, भोग सबसे वृत्तियाँ हट जायँ, ये सब ईश्वरकी भक्तिमें बाधक मालूम हों। भगवान्‌के सिवाय कोई बात अच्छी नहीं लगे, चैन नहीं पड़े, यह विरह-व्याकुलताकी लाइनकी बीचकी अवस्था है। प्रेमके मार्गमें बीचकी अवस्था यह है—भगवान्‌की प्रतीक्षा हो रही है कि

भगवान् आज नहीं आये तो कल आयेंगे। भगवान्पर निर्भर है, विश्वास है कि भगवान् जरूर मिलेंगे। जैसे—नरसी मेहता, प्रह्लादको पूर्ण विश्वास था। समय-समयपर भगवान्से मिलन, रोमांच, प्रसन्नता, शान्ति होती है, रात-दिन भगवान्से वार्तालाप होता है। भगवान्के साथ ही सारा कार्य प्रसन्नता, आनन्द, शान्तिमें मुग्ध हुआ करे। यह बीचकी अवस्था है। इससे आगे तीसरी अवस्था विरह-व्याकुलतावाली तो ऐसी है जैसे कोई आदमी इतना व्याकुल हो जाय कि जीना भार हो जाय। भगवान् नहीं आयें तो अपना जीवन बेकार है, खाना-पीना अच्छा लगे ही नहीं। अपने देहकी स्मृति न रहे। बाहरी ज्ञान बहुत ही कम हो जाय। कहीं भी शरीर रहे—रातको नींद नहीं, दिनको भूख नहीं, लज्जा नहीं, भय नहीं, न रातका भय, न दिनका भय, न जीनेकी परवाह, शरीरका ज्ञान नहीं, एक भगवान्के मिले बिना जीना भी भार है। किसमें प्राण अटक रहे हैं, जैसे सीताजीकी अवस्था थी। एक-एक क्षण भारी हो रहा है। हनुमान्जीको सन्देश दे रही हैं। जानकर आत्महत्या नहीं करतीं, किन्तु विरहकी व्याकुलतामें ऐसी स्थिति हो जाती है। बाहरका ज्ञान कम हो जाता है, लोग क्या कहेंगे इसकी परवाह नहीं रहती। शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार कार्य वह नहीं छोड़ता, किन्तु उससे क्रियारूपमें नहीं आ पाता। रात-दिन रोता ही रहता है। कभी अपनेपर दोषकी कल्पना करता है तो कभी भगवान्पर कल्पना करता है। भगवान्को विनोदसे कहे कि क्यों नहीं आते। रुक्मिणीकी तरह प्राणोंका त्याग कर दूँगा; किन्तु आपके सिवाय किसीका वरण नहीं करूँगा। एक-एक क्षण युगके समान बीते, ऐसी अवस्था हो जाय तो तड़पे। '**तद्विस्मरणे परमव्याकुलता**' एक क्षण भी विस्मरण हो जाय तो इस प्रकारकी दशा हो जाय तब भगवान्को आना ही पड़ेगा। '***मैं आशिक तेरे रूपपर बिन मिले***

खबर नहीं होती।' शरीर दुर्बल हो जाता है। बाहरकी अवस्था पागलपनकी-सी, बेहोशीकी-सी, उन्मादकी-सी हो जाती है। वास्तवमें उन्माद प्रमाद नहीं है। बाहरमें कोई हल्ला-गुल्ला, मारना-पीटना नहीं होता, किन्तु बाहरी ज्ञान कम हो जाता है। केवल भगवान्‌की विरह-व्याकुलतामें घूम रहा है। न खानेका, न पीनेका, न सोनेका ज्ञान है, खाली एक ही लगन रह जाती है—

लगन लगन सब कोइ कहे लगन कहावै सोय।
नारायण वा लगनमें तन मन दीजै खोय॥

जैसे कोई पागल आदमी कभी हँसे, कभी बालककी-सी चेष्टा करे। उसे प्रतीत होता है कि भगवान् मुझसे नित्य मिलते हैं, प्रत्यक्षमें मिलते हैं, कभी भगवान्‌को पकड़ता है, कभी बातचीत करता है, दूसरे आदमी उसे पागल समझते हैं। उसके आनन्द, प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहता। उसे प्रतीत होता है कि भगवान् साथ-साथ चल रहे हैं। प्रारम्भमें तो कल्पना है, मान्यता है, दूसरी अवस्थामें आँखोंसे नहीं दीखते, तीसरी अवस्थामें कभी दीखने भी लग जाते हैं। भगवान्‌के साथ हँसना, गाना, बजाना, विनोद, किलोल, बातचीत मानो उसे प्रत्यक्ष दीख रही है, प्रत्यक्ष है। वह ऐसी चेष्टा नहीं करता जिससे दूसरेको यह मालूम पड़े। वहाँ दिखाऊपन नहीं है।

संयोगमें, प्रेममें खाने, पीने, सोनेका बाहरी ज्ञान नहीं है। बाहरमें दोनोंमें ही समानता है। संयोगमें एक विशेषता है—शरीर कृश नहीं होता है। विरहमें तड़पन है, संयोगमें तड़पन नहीं है। विरह रोना है, संयोग हँसना है, आनन्द है, क्रीड़ा है, गाना-बजाना है। भगवान्‌ने कहा है—**'तुष्यन्ति च रमन्ति च'**। वास्तवमें यह भगवान्‌से मिलन नहीं है, मात्र उसकी दृष्टिमें है। इसका फल है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

(गीता १०। १०-११)

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं। उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये उनके अन्त:करणमें स्थित हुआ मैं स्वयं ही उनके अज्ञानजनित अन्धकारको प्रकाशमय तत्त्वज्ञान दीपकके द्वारा नष्ट कर देता हूँ।

भरतजीकी दशा व्याकुलताकी है। अधिक व्याकुल हो गये तो हनुमान्‌जी आ गये।

प्रेमके मार्गमें प्रसन्नता, शान्ति, आनन्दकी बाहुल्यता है। फल दोनोंका समान है। खाने-पीने, सोने-जागनेमें संसारकी बेपरवाही है। एकमें मानसिक मिलन है, एकमें वियोग है। यहाँ हँसने, क्रीड़ाकी प्रधानता है, वहाँ तड़पनकी प्रधानता है।

❑ ❑

ज्ञान और योग

मूलमें दो सिद्धान्त हैं। भेद और अभेद या ज्ञान और योग। योगमार्गके भी दो भेद हैं—निष्काम कर्मयोग और भक्तियोग। उसमें फिर अवान्तर भेद हो जाते हैं। भक्तिके बिना तो गीताका कोई योग है ही नहीं। एकमें तो भक्ति सामान्य भावसे रहती है। एकमें भक्तिकी प्रधानता रहती है। उसे ही हम भक्तियोग कहते हैं। बिना भक्तिके तो गीतोक्त कर्मयोग है ही नहीं। भक्तिप्रधानको भक्तियोग तथा कर्मप्रधानको कर्मयोग कहते हैं। भक्तियोगमें भी दो भेद हैं—भगवदर्थ उपासना तथा भगवदर्पण उपासना। इन दोनोंमें ही भक्तिकी ही प्रधानता है। ज्ञानयोग और कर्मयोग दोनोंका एक कालमें एक मनुष्यके द्वारा साधन नहीं हो सकता। दोनोंमें अलग-अलग निश्चय, अलग-अलग भावना है। कर्मयोगमें जीव और ईश्वरका भेद है, ज्ञानमें अभेद है। जहाँ कर्मयोग है वहाँ भक्ति रह सकती है, क्योंकि दोनोंमें ही ईश्वरकी आवश्यकता रहती है।

ज्ञानयोगके चार भेद परस्पर हो जाते हैं—

(१) जो कुछ है सब ब्रह्म है।

(२) जो कुछ है सब स्वप्नवत् है, इसे बाधकर जो बच जाता है, वह ब्रह्म है।

(३) जो कुछ है सो मेरी आत्मा है।

(४) जो कुछ दृश्य है वह नहीं है, सबको बाध करके जो बचता है, वह मेरी आत्मा ही है।

उपासना ज्ञानके साथ भी रहती है, कर्मके साथ भी। ज्ञानके साथ उपासना अभेद-उपासना है। कर्मके साथ भेद-उपासना है। जीव-ईश्वर भिन्न हैं। ज्ञानमिश्रित भक्तिमें भक्तिकी प्रधानता

प्रवचन-तिथि—दिनांक १-५-१९४५, प्रात:काल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

रहती है। भक्तिमिश्रित ज्ञानमें ज्ञानकी प्रधानता रहती है। पहले भेद-उपासना होती है फिर उसके फलस्वरूप अभेद-उपासना होती है। इस तरहके साधनमें भक्ति प्रधान नहीं रही। भक्तिके मार्गमें ज्ञानका मिश्रण इस प्रकारका नहीं है कि जीव-ईश्वर एक हैं। इस तरहका ज्ञान रहता है कि जो कुछ है सब वासुदेव है; किन्तु मैं वासुदेव नहीं, मैं उनका सेवक हूँ।

परमात्माका सगुण और निर्गुण स्वरूप दोनों ही प्रकारसे ध्यान किया जा सकता है। सगुणके दो भेद हैं—सगुण-साकार और सगुण-निराकार। सगुणकी उपासना भेदरूपसे होती है किन्तु यदि फलमें यह मान्यता रहे कि इसका फल अभेद हो जाता है तो अभेदकी प्रधानता आ जाती है। निर्गुण-निराकारकी उपासना तो अभेदरूपसे है ही। सगुण-निराकारकी उपासनामें भेद-अभेद दोनों है। जिनकी रुचि निर्गुण ब्रह्ममें है, अभेदरूपसे भगवान्में मिलनेकी है, वह ज्ञानयोगका अधिकारी है। शास्त्रोंमें बताया गया है कि जिसकी निर्गुण ब्रह्ममें रुचि है, वही निर्गुण ब्रह्मका अधिकारी है।

जिसकी जिस विषयमें रुचि है, श्रद्धा है, वह उसीका अधिकारी है, यह सिद्धान्त है। बी० ए० पास करनेके बाद छात्रकी इंजीनियर, डॉक्टर, वकालत जिस तरफ रुचि होती है, वही शिक्षा उसे दी जाती है। सबकी रुचि भिन्न-भिन्न होती है, इसमें हेतु पूर्वका संस्कार होता है। इसीलिये भगवान्ने कहा है—**'त्रिविधा भवति श्रद्धा'**—भगवत्-विषयको लेकर जो श्रद्धा है वह सात्त्विक ही है, राजसी-तामसी नहीं। पात्रका निर्णय उसकी श्रद्धा और रुचिसे होता है। जो पात्र अपने विषयमें खुद निर्णय नहीं कर सकता, उसे अपना निर्णय जिसमें श्रद्धा हो, उससे करवाना चाहिये। चाहे वह श्रद्धेय अपना गुरु हो, चाहे पिता हो, चाहे महात्मा हो, चाहे देवता हो। श्रद्धेय निर्णय देनेवाला यदि

योग्य होता है तो वह सारी बातें पूछकर, सोचकर निर्णय दिया करता है। जिसमें उसकी रुचि देखता है उसे उसीका अधिकारी बताता है। यदि भगवान्‌के रूप-लावण्यमें प्रीति देखता है तो कह देता है कि तुम सगुणके अधिकारी हो, उनमें भी श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीविष्णु—जिनमें उसका झुकाव देखता है, उन्हींकी उपासना करनेकी राय देता है। कोई मुझसे कहे कि आप सब युक्तियाँ जानते हैं तो निर्णय देते होंगे। मैं सलाह तो देता हूँ; किन्तु गुरु किसीका अभीतक नहीं बना; क्योंकि न तो मैं इसका अधिकारी हूँ, न अपनेको योग्य समझता हूँ। तीसरी बात स्वार्थकी है—गुरु श्रद्धेय होता है। शिष्य सेवक होता है। दास जो पाप करता है, उसका हिस्सा गुरुको मिलता है। गुरु जो पाप करता है, सेवकको वह नहीं भोगना पड़ता। बंगालमें बैलको गोरू कहते हैं, गुरु बनता-बनता कहीं गोरू न बन जाय, गोरू बने तो नाकमें नाथ पड़ेगी। इसलिये मैं इसे खतरेकी बात समझता हूँ। दूसरी बात यह है कि गुरु बननेका अधिकार ब्राह्मणको है, वैश्यको नहीं। अब रही योग्यताकी बात—जिसकी ऐसी सामर्थ्य हो, जो दूसरेका कल्याण कर सके, ऐसे महापुरुषोंको तो हानि नहीं होती। वे तो मुक्ति देनेकी टकसाल हैं। ऐसी सामर्थ्य मैं अपनी नहीं समझता हूँ, यदि हो जाय तो मैं तो भगवान्‌से यही कहता हूँ कि मुझे इसकी खबर न दें। इसमें भी एक रहस्य है; क्योंकि मेरा यह ध्येय रहता है कि जहाँतक हो सके मनुष्यको सत्य बोलना चाहिये। मुझे यदि जानकारी हो जायगी तो मैं कैसे कहूँगा कि मैं इसके लायक नहीं हूँ और जो आदमी इस कामको स्वीकार कर लेता है, उसे सब आदमी आकर तंग करते हैं। कोई भी काम हो, यदि यहाँ खुले हाथसे कपड़ा बाँटने लगें तो इतनी भीड़ लग जायगी कि बाँटनेवालेको अपना जीवन भाररूप हो जायगा। यह तो कपड़ा बाँटनेकी मामूली-सी बात है, भगवान्‌की

प्राप्ति तो कितनी बड़ी बात है। यह काम तो भगवान्‌को अपने जिम्मे ही रखना चाहिये। दूसरे किसीको देना हो तो शंकरजी इसके अधिकारी हैं। उन्होंने काशीमें अपना क्षेत्र खोल ही रखा है। भगवान् यदि दूसरे किसीको अधिकार दें तो उसे स्वयं अपना प्रचार नहीं करना चाहिये। मुझसे कोई पूछता है कि तुम कैसे आदमी हो तो मैं यही कहता हूँ कि मैं साधारण आदमी हूँ। आप पूछें कि इसमें झूठका दोष नहीं आता क्या? बात यह है कि शरीरकी दृष्टिसे देखा जाय तो हम सबके पांचभौतिक शरीर हैं। मेरे शरीरमें कोई विशेषता नहीं है। इसलिये समान ही हुए और आत्माकी दृष्टिसे कोई फरक है नहीं। आत्मा सबकी एक ही है। भक्तिके सिद्धान्तसे भगवान् खुद ही कहते हैं—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥ (गीता १०। २०)

हे अर्जुन! मैं सब भूतोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतोंका आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ।

किसी भी प्रकारसे भेद नहीं है—यही समानता है। इसलिये न तो कहनेमें दोष आता है, न माननेमें। आप कहें, कोई आपको ज्ञानी भक्त माने तो बात यह है कि उसकी यह मान्यता वास्तवमें ठीक नहीं है। वह तो मानी हुई बात है। आप कहें कि साधनकालमें तो मान्यता ही करनी पड़ती है। परमात्माका स्वरूप तो देखा नहीं, उसकी तो मान्यता ही करनी पड़ती है। परमात्माकी मान्यता गलत नहीं होती। वह तो ठीक ही होती है। कोई मनुष्य क्या है यह तो भगवान् ही जानते हैं।

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥ (गीता ७। २६)

हे अर्जुन! पूर्वमें व्यतीत हुए और वर्तमानमें स्थित तथा आगे

होनेवाले सब भूतोंको मैं जानता हूँ, परंतु मुझको कोई भी श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता।

मैं कैसा हूँ, यह भी भगवान् ही जानते हैं। कोई पूछे कि तुम्हारी कैसी स्थिति है, यह मैं बतलाना नहीं चाहता। नहीं बतलानेमें सब स्वतन्त्र हैं, उसमें कोईकी जबरदस्ती नहीं है।

किसीको अपनी स्थिति नहीं बतलानी चाहिये। आपको भी यह बात अच्छी लगे तो आप भी काममें ला सकते हैं। मान्यताको ही सिद्धान्त कह देते हैं। इसलिये यह समझ सकते हैं कि यह मेरा सिद्धान्त है। आप पूछें कि फिर सिद्धान्त क्यों नहीं कहते? सिद्धान्त आदरसूचक शब्द है, मान्यता साधारण शब्द है तथा दोनोंमें कुछ फर्क भी है। मान्यता पहली अवस्था है, सिद्धान्त उसका फल है, असली चीज है। किन्तु समझानेके लिये सिद्धान्त शब्द कह दिया जाय तो कोई आपत्ति नहीं है। अपने लिये कोई उच्चारण करना पड़े तो हलका ही करना चाहिये।

भगवान् कहते हैं—अर्जुन! मेरे और तुम्हारे इस गीतारूपी संवादका जो किसी प्रकार भी प्रचार करेगा, वह मेरी भक्ति करके मुझे प्राप्त होगा। उसके समान मेरा प्रिय कार्य करनेवाला न कोई है, न कोई होगा। अपना सिद्धान्त काममें लानेवालेसे प्यारी न तो अपनी स्त्री होती है, न पुत्र, न अपने प्राण ही। यह न्याय है, सिद्धान्तके अनुसार जो कोई चलता है उतना प्रिय न तो भाई होना चाहिये, न स्त्री, न अपना शरीर ही। इसीलिये भगवान् कहते हैं, उसके समान मेरा प्रिय न तो कोई है न आगे होगा। भक्तिके मार्गमें सबसे बढ़कर गोपियाँ मानी जाती हैं; किन्तु उनके लिये भगवान्ने वर्तमान क्रियाका ही प्रयोग किया है। गोपियोंसे बढ़कर आगे कोई प्रिय करनेवाला नहीं होगा यह बात नहीं कही है; किन्तु सिद्धान्तके अनुसार चलनेवालेके लिये भविष्य-क्रियाका प्रयोग किया है। सबका उद्धार करनेवाला अभीतक

कोई नहीं हुआ है। वह स्थान खाली है। मनुष्य ऐसा बन सकता है कि सबका कल्याण कर सके। मनुष्यको आशा रखनी चाहिये कि जो बात आजतक नहीं हुई, वह भी हो सकती है। आजतक भगवान्‌की प्राप्ति नहीं हुई तो क्या अब नहीं हो सकती है? ऐसा मान लेंगे तो हमारा पतन हो जायगा। हमें तो वही काम करना है जो अभीतक नहीं कर पाये। वह काम है परमात्माकी प्राप्ति। हमारा भटकना इस बातकी गवाही है कि अभी परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई है। यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। असम्भव मानना मूर्खता है। असम्भव माननेसे हम उससे वंचित रह जायँगे। कष्टसाध्य भी नहीं मानना चाहिये। यदि हमें कठिन प्रतीत हो रही है तो हमारी मान्यता गलत है। यदि ईश्वर या महात्मामें श्रद्धा होती तो यह मान्यता नहीं रहती; क्योंकि कोई भी महात्मा भगवत्प्राप्तिको कष्टसाध्य नहीं बताते हैं, अपितु सुख-साध्य बताते हैं। हमें तो गीता, भगवान् या महात्माओंके वचन ही मानने चाहिये। गीतामें भगवान् कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ (८।१४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ। कुछ लोग अनन्य चिन्तनको कठिन मानते हैं तथा इसे सुखसाध्य नहीं समझते हैं। भगवान्‌ने कहा है कि जो मेरेमें मनको लगा देते हैं उनका उद्धार मैं कर देता हूँ; किन्तु भगवान्‌में चित्तका समावेश करना तो कष्ट-साध्य है, यह बात नहीं है। बड़ी गंभीर और बड़े रहस्यकी बात बतायी जाती है ध्यान दें— अनन्य चिन्तन करनेसे भगवान् सुलभ हैं यह बात तो ठीक है,

यह कष्टसाध्य नहीं है। जब आपको यह निश्चय, विश्वास हो जायगा कि अनन्यचिन्तनसे भगवान् मिलते हैं तो जबतक अनन्यचिन्तन नहीं होगा तबतक आपको चैन नहीं मिलेगा। अनन्यचिन्तनके लिये आप उतारू हो जायँ फिर वह काम न हो, यह बात सम्भव नहीं है। जब भगवान्में आपका विश्वास हो जायगा कि भगवान्से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। आप भगवान्से बिना मिले नहीं रह सकेंगे। आप भगवान्के बिना नहीं रह सकेंगे तो भगवान् आपसे बिना मिले नहीं रह सकेंगे। फिर विलम्बका काम नहीं है। यह बात तब होगी जब आप भगवान्को सबसे बढ़कर समझने लगें—

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥ (गीता १५। १९)

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।

भगवान्ने सर्वज्ञ और असंमूढ़ दो विशेषण दिये हैं। असंमूढ़ जिसमें मूर्खता नहीं है। सर्वज्ञ जिसने जाननेवाली बातको जान लिया है। पहली बातमें अज्ञानका अभाव है, दूसरीमें ज्ञानका भाव है। भगवान्को हम नहीं जानते यह हमारी मूर्खता है। मूर्खता चली जायगी तो असंमूढ़ हो जायँगे। पहले तो मान्यता है फिर उसका अनुभव होता है। हमें शास्त्रोंके, महात्माओंके वचनोंपर विश्वास रखकर मानना चाहिये कि भगवान्से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। मान्यता परोक्ष ज्ञान है।

सूर्य हमें पश्चिममें उदय होता दीखता है; किन्तु हमने पुस्तकोंमें पढ़ा है कि प्रातःकाल जिधर सूर्योदय हो वही पूर्व है। हमारा अनुभव भी है कि सूर्य पूर्वमें उदय होता है, अतः हम उसे पूर्व मानकर चलेंगे। उस जगह हमारी मान्यता परोक्ष ज्ञान

है और हमारे मनका भ्रम जब मिट जाता है, यह अपरोक्ष ज्ञान है। पहले हमें यह मान्यता करनी चाहिये कि भगवान् हैं। दूसरी मान्यता है कि भगवान्‌से बढ़कर कोई नहीं है। जब यह मान्यता दृढ़ हो जायगी तो निरन्तर भजन होगा। हमारे विश्वासकी ही कमी है। शास्त्र बतलाते हैं सुगम हैं, महात्मा कहते हैं सुगम हैं, आप कहें कि साधन तो कठिन है; किन्तु ऐसी बात नहीं है। भगवान्‌ने कहा है—

प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥ (गीता ९। २)

—करनेमें सुगम एवं अविनाशी है। आगे भगवान् साधन बतलाते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ (गीता ९। ३४)

मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्माको मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा। चाहे अनन्यचिन्तन कहें, एक ही बात है। इसके पूर्वमें भी भगवान्‌ने कहा है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ (गीता ९। २२)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ। इसके आगे कहते हैं—

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥ (गीता ९। ३१)

वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

मेरे भक्तका नाश नहीं होता। कमीकी पूर्ति करते हैं, पतन नहीं होने देते। जो अनन्य चिन्तन करता है उसे अप्राप्तकी प्राप्ति करा देते हैं। गीता नवें अध्यायमें प्रतिज्ञा करके भगवान्ने अध्याय समाप्ति-पर्यन्त जो बात कही है उसे कठिन मानना मूर्खता है। हमें विश्वास करना चाहिये कि भगवान्ने जो बात कही है, वह सच्ची है। हमारेमें श्रद्धाकी ही तो कमी है। भगवान् कहते हैं—

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥ (गीता ९।३)

हे परन्तप! इस उपर्युक्त धर्ममें श्रद्धारहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसारचक्रमें भ्रमण करते रहते हैं।

इससे यह बात सिद्ध होती है कि श्रद्धा करनेसे साधनकी तत्परता होगी। मनुष्यकी जिस विषयमें श्रद्धा हो जाती है, उसके साधनमें उसकी तत्परता प्रत्यक्ष देखनेमें आती है। रुपया उपार्जन करनेमें भगवान्ने कहीं नहीं कहा कि प्रयत्नसे रुपये मिल सकते हैं। वहाँ तो प्रारब्धका सम्बन्ध है। रुपयोंके लिये सब कुछ करनेको तैयार हैं, किन्तु तकदीरमें नहीं तो जन्मभर कंगाल ही रहते हैं; किन्तु ईश्वरकी प्राप्तिमें यह बात नहीं है; क्योंकि ईश्वर मदद करते हैं, रुपया मदद नहीं करता। भगवान्ने प्रतिज्ञा की है कि जो मेरे सेवक हैं, मैं उनका सेवक बन जाता हूँ, किन्तु रुपये यह बात नहीं कहते। अर्थकी सिद्धि तो प्रारब्धसे होती है, परमात्माकी प्राप्ति प्रारब्धपर निर्भर नहीं है। उनकी प्राप्ति श्रद्धापर निर्भर है। श्रद्धा होगी तो परमात्माकी प्राप्ति अवश्य होगी। इसलिये जगह-जगह यह बात कही गयी है कि श्रद्धा करो, श्रद्धा करो—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥ (गीता १२।२)

मुझमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे

हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमेश्वरको भजते हैं, वे मुझको योगियोंमें अति उत्तम योगी मान्य हैं।

हमारा अन्त:करण मलिन है इसलिये श्रद्धा नहीं होती। अन्त:करण शुद्ध होनेके लिये कई उपाय बताये गये हैं। जप, ध्यान, सत्संग, संयम सबसे बढ़कर उपाय हैं। भगवान्‌के नामका जप और स्वार्थको त्यागकर दु:खियोंकी सेवा, हेतुरहित दया होनेसे ही हेतुरहित सेवा होगी। यह बात या तो भगवान्‌में मिलती है या महात्माओंमें मिलती है या उच्चकोटिके साधकमें मिलती है। इसीलिये तुलसीदासजीने कहा है—

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

गीतामें भगवान् कहते हैं—

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥

(१२।४)

सभी प्राणियोंके हितमें रत साधक मुझे ही प्राप्त होते हैं।

जिसके हृदयमें दूसरेका हित वास करता है उसके लिये कुछ दुर्लभ नहीं है। कर्मयोगमें प्रधान बात यह है कि स्वार्थको त्यागकर दूसरेका हित करना।

कायेन मनसा बुद्‌ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥
युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते॥

(गीता ५। ११-१२)

कर्मयोगी ममत्वबुद्धिरहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीरद्वारा भी आसक्तिको त्यागकर अन्त:करणशुद्धिके लिये कर्म करते हैं। कर्मयोगी कर्मोंके फलका त्याग करके भगवत्प्राप्तिरूप

शान्तिको प्राप्त होता है और सकामपुरुष कामनाकी प्रेरणासे फलमें आसक्त होकर बँधता है।

भगवान्‌के भजनसे कैसा ही पापी हो उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। जीवोंपर दया, भगवान्‌के नाममें रुचि—ये दो चीजें प्रयत्न साध्य हैं। अन्तःकरणकी शुद्धिके कई उपाय हैं, किन्तु प्रधान दो बताये गये हैं—वैराग्य और सत्संग। वैराग्यसे साधन तेज होता है, इसीलिये हमें सत्संग करना चाहिये तथा संसारसे वैराग्य करना चाहिये। पूर्ण आनन्द, अपार आनन्द एकान्तमें इस प्रकारका शब्द उच्चारण करे तो एक मिनटमें परमात्माका ध्यान हो सकता है। परमात्माका तत्त्व-रहस्य सबसे बढ़कर है। परमात्माके स्वरूपके दो भेद हैं—सगुण और निर्गुण। साकार और निराकार दोनों सगुणके ही भेद हैं। तत्त्व सबका समझना चाहिये। यदि तत्त्व समझमें आ जाय तो बेड़ा पार है। चाहे साधन करें; चाहे न करें। तत्त्व समझमें आनेसे साधन ही होगा। सगुणका तत्त्व भगवान् बताते हैं—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥ (गीता ५।२९)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपोंका भोगनेवाला, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥ (गीता ४।९)

हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता, किंतु मुझे ही प्राप्त होता है।

जन्म और कर्मकी दिव्यता सगुणका तत्त्व है। पहले श्लोकमें सगुण निराकार दोनोंका तत्त्व है। केवल निराकारका तत्त्व इस श्लोकमें बतलाते हैं—

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥ (गीता १३।१२)

जो जाननेयोग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य परमानन्दको प्राप्त होता है, उसको भलीभाँति कहूँगा। वह अनादिवाला परमब्रह्म न सत् ही कहा जाता है, न असत् ही।

सगुण और निर्गुणका तत्त्व और रहस्य समझनेकी बड़ी आवश्यकता है। सगुणमें गुण और प्रभावकी बातें ज्यादा महत्त्वपूर्ण होती हैं। हमें यही भाव रखना चाहिये कि भगवान् निराकाररूपसे तो सर्वत्र व्याप्त ही हैं। प्रसन्नता, आनन्द, शान्ति यह उनका निराकार स्वरूप है। यह आभासमात्र है, नमूना है फिर वह असली चीज कितनी उच्चकोटिकी है। जिस समय ज्ञान, शान्तिका शब्द आप सुनते हैं उस समय आप उस तरहका भाव कर लेंगे तो आपको ज्ञान और शान्तिका अपनेमें अनुभव होगा। अणु-अणुमें ज्ञानकी दीप्ति और शान्ति प्रतीत होगी।

❑ ❑

तीर्थोंमें पालनीय बातें

बहुत-से भाई बद्रिकाश्रम, केदारनाथ, गंगोत्री, जमनोत्री जा रहे हैं। उनका जाना बहुत उत्तम है, पैदल जाना बहुत उत्तम है। देवप्रयागतक तो मोटरसे भी जा सकते हैं, किन्तु भगवान्‌को विशेषरूपसे याद रखना चाहिये। मोटर कहीं गिर भी जाय, हमारी मृत्यु भी हो जाय तो कल्याण हो जाय। परमात्माका ध्यान रखते हुए हमारी मृत्यु हो तो बहुत ही लाभकी बात है। लोग आरामके अधीन हो गये हैं। पहले तो पैदल ही जाया करते थे। महात्माकी बात तो पैदलकी ही है, जिसे लोग जानते ही हैं। परमात्माका ध्यान करते हुए मृत्यु हो तो उस मृत्युका अफसोस नहीं है। इसलिये परमात्माका ध्यान करना चाहिये। भगवान् कहते हैं—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ (गीता ८। ५)

इसका खूब प्रचार करना चाहिये। जो बद्रिकाश्रम जानेवाले हैं, उनसे प्रार्थना करनी चाहिये कि प्रथम तो पैदल ही जाना चाहिये। मोटरसे भी जायँ तो हर वक्त भगवान्‌को याद रखना चाहिये। कहीं मोटर इधर-उधर हो गयी तो मृत्यु है। उस समय बस केवल भगवान्‌को ही याद रखनेसे कल्याण है। हर एक तीर्थमें स्नान करना चाहिये। स्नान करते समय यह समझना चाहिये कि कैसा ही पापी हो, स्नान करनेसे पवित्र हो जाता है। भगवती गंगाकी ऐसी ही महिमा है कि इनमें स्नान करनेसे मनुष्य परम पवित्र हो जाता है, किन्तु रोज स्नान करनेपर भी लोग पवित्र नहीं होते। इसका कारण है कि उन्हें विश्वास नहीं है। गंगाका स्नान या पान करें तो हमें विश्वास करना चाहिये कि यह जल

प्रवचन-तिथि—दिनांक ७-५-१९४५, दोपहर, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

सारे पापोंको धो देता है। ऋषिकेशसे लक्ष्मणझूलातक जगह-जगह भगवान्‌के मंदिर आते हैं, चार मंदिर प्रधान हैं।* इनमें जाकर दर्शन करना चाहिये और तुलसीचरणामृत लेना चाहिये। प्रधान बात वहाँ प्रेम है। भगवान् केवल प्रेम देखते हैं। पैसेकी तरफ भगवान्‌का खयाल नहीं रहता। पैसेकी तरफ तो पुजारीका खयाल रहता है। मंदिरमें पुष्प ले जाने चाहिये। जिन्हें दूरसे भगवान्‌के मस्तकपर चढ़ा देना चाहिये। भगवान् तो कोई भी एक चीजसे प्रसन्न हो जाते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ (गीता ९। २६)

जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ। खाना तो बड़े प्रेमसे देनेसे होता है; किन्तु स्वीकार तो कर ही लेते हैं। वापस तो फेंकते ही नहीं हैं। हम किसी मंदिरमें जायँ, भगवान् शिवका मंदिर हो तो बिल्वपत्र चढ़ायें। भगवान् श्रीराम या श्रीविष्णुजीके मन्दिरमें जायँ तो गुलाब या गेंदेके पुष्प हों, पत्रके स्थानमें तुलसी पत्र, इससे भगवान् ज्यादा प्रसन्न होते हैं। जो देवता जिस वस्तुसे प्रसन्न हों वही वस्तु चढ़ानी चाहिये। बद्रिकाश्रम जाते हैं, बद्रिका बेरको कहते हैं। यहाँ भगवान् बेरसे ज्यादा खुश होते हैं। शिवजी भगवान् बेरसे खुश होते हैं। इसलिये मंदिरोंमें जाकर भगवान्‌की पत्र-पुष्पसे पूजा करनी चाहिये। दूसरा प्रयोजन तीर्थमें आनेका यही है। तीसरा प्रयोजन यह है कि यहाँ आकर पितरोंके

* परम श्रद्धेय गोयन्दकाजी प्रायः इन चार मंदिरोंमें जाया करते थे—भरतमंदिर ऋषीकेश; मनोकामना-सिद्ध हनुमान्-मंदिर, मायाकुंड ऋषीकेश; शत्रुघ्नमंदिर मुनिकी रेती तथा लक्ष्मणमंदिर लक्ष्मणझूला।

कल्याणके लिये श्राद्ध-तर्पण करने चाहिये। तीर्थोंमें जो श्राद्ध-तर्पण किया जाता है उसका अधिक फल बताया गया है। जो साधु हैं उनसे उपदेश लेना चाहिये। अपनेसे हो सके उतनी उनकी सेवा करनी चाहिये। साधुओंको रुपया न दें, शास्त्रोंमें साधुओंको रुपया देनेके लिये निषेध है। इसलिये जहाँतक हो सके, उन्हें जिस पदार्थकी आवश्यकता हो, वह खरीदकर देना चाहिये। पदार्थोंके द्वारा उनकी सेवा करनी चाहिये। जो दुःखी हैं, अनाथ हैं, उन्हें भी अन्न आदि देकर उनकी सेवा करनी चाहिये। अन्न देनेसे वे खाते हैं। वस्त्र देनेसे उनके पहननेके काममें आता है। अब और महत्त्वपूर्ण बात बतायी जाती है। शास्त्रोंमें बताया है—तीर्थोंमें जाना यम-नियमका पालन करनेसे सफल होता है। यम पाँच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। जहाँ पाँच यम रहते हैं, वहाँ यमराज नहीं आ सकते।

अहिंसा—किसीको कष्ट नहीं देना। हमारे द्वारा किसी चींटीको भी कष्ट न पहुँचे। हम चलें तो देखकर चलें। यहाँ हम हिंसाके लिये नहीं आये हैं। जीवोंकी हिंसा बड़ा भारी पाप है।

सत्य—सत्य वचन बोलना चाहिये। यहाँ झूठ बोलनेका ज्यादा पाप है। पाप तो झूठ बोलनेका सभी जगह है, किन्तु यहाँ ज्यादा है। यहाँ किया हुआ पुण्य अनन्त हो जाता है और पाप भी अनन्त हो जाता है। रास्तेमें कहीं तीर्थ आये तो दूर हटकर पेशाब करना चाहिये। जिस चीजसे जितना लाभ है, उसका तिरस्कार करनेसे उतनी ही हानि है, यह प्रत्यक्ष बात है।

अस्तेय—दूसरेकी वस्तु नहीं छूनी चाहिये। हराम समझना चाहिये। बहुत-से भाईलोग समझते नहीं हैं, वृक्षोंसे आम आदि तोड़ लाते हैं। धर्मस्थलकी चीज बिना पैसा दिये खानी क्षत्रिय और वैश्यके लिये पाप है। साधु ब्राह्मणोंके लिये दोष नहीं है, किन्तु इतना तो उन्हें भी विचार करना चाहिये कि दूसरेकी चीज

मालिकको कहे बिना नहीं लेनी चाहिये, अन्यथा वह चोरी गिनी जाती है। साधु और ब्राह्मणोंको छोड़कर दूसरा आदमी यदि भिक्षा लेता है तो उसका पतन हो जाता है। अपनी कमाईके पैसे देकर ही चीज लेनी चाहिये, मुफ्तकी चीज नहीं लेनी चाहिये। तीर्थोंमें जो लोग आते हैं उन्हें यहाँ पराये अन्नका त्याग ही रखना चाहिये। यह बहुत ही घातक है। देनेपर भी नहीं लेना चाहिये। कोई प्रसाद दे तो एक मासाभर लेना चाहिये। प्रसाद पेटभर नहीं लेना चाहिये। बिना कहे लेना तो चोरी है। चोरीसे बढ़कर पाप क्या होगा। शंख और लिखित दो भाई थे। एक बार लिखित शंखके आश्रममें गये। लिखितने बिना पूछे फल तोड़ लिये तथा उनके आनेपर इस बारेमें शंखको बताया। लिखितके पूछनेपर शंखने कहा कि बिना पूछे तोड़ना चोरी है जिसका दण्ड राजासे लेना चाहिये। लिखितने राजासे कहकर दण्डस्वरूप अपने हाथ कटवा लिये। उनके पिताके श्राद्धके समय बड़े भाईने छोटे भाईको आज्ञा दी कि तुम तर्पण कर आओ। तर्पण करते समय लिखितके दोनों हाथ पूर्ववत् आ गये। इससे हमें शिक्षा लेनी चाहिये। त्यागमें ही शान्ति है, हमें त्याग सीखना चाहिये। त्यागसे कल्याण होगा।

ब्रह्मचर्य—परस्त्रीको देखना ही नहीं चाहिये। कहीं बोलना पड़े तो नीची नजर करके बात करनी चाहिये। अश्लील बात नहीं करनी चाहिये। स्पर्श तो करना ही नहीं चाहिये। मनसे भी उसका चिन्तन नहीं करना चाहिये। हमें परायी स्त्रीको माता-बहनके समान समझनेकी यहाँ शपथ लेनी चाहिये।

तुलसीदासजी कहते हैं—

सत्यबचन आधीनता परतिय मातु समान।
इतनेमें हरि ना मिलें तुलसीदास जमान॥

तीन बातें बतायीं—१. सत्य वचन बोलना। २. भगवान्‌के

शरण होना। सबका सेवक होकर रहना। ३. परस्त्रीको माताके समान समझना।

चाणक्यनीतिमें कहा है—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति॥

तीन बातें बतायी हैं—दूसरेकी स्त्रीको माताके समान समझना, दूसरेके धनको मिट्टीके समान समझना तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको आत्माकी तरह समझना। तीर्थोंमें आकर स्त्रीके लिये तो शपथ ही लेनी चाहिये कि दूसरी स्त्रीको माताके समान समझूँगा।

संग्रहका त्याग—यहाँ आकर अपना जीवन तपोमय बिताना चाहिये। खाने-पीनेकी चीजोंका संयम करना चाहिये। शरीर, इन्द्रियाँ और मन, इनपर नियन्त्रण करना चाहिये। भोजन अल्प और हलका खाना चाहिये। दिनमें दो बारसे ज्यादा भोजन न करे। सामग्री भी ज्यादा नहीं हो, दो या तीन चीजसे अधिक न हो। वाणीका संयम रखना चाहिये। समय-समयपर मौन रहना चाहिये, जिससे भजन अधिक हो। स्नान, भोजन, शौच, सन्ध्या आदिके समय तो मौन रहनेके लिये शास्त्रकी आज्ञा है ही। हाथोंका संयम रखना चाहिये, किसीसे मारपीट नहीं करनी चाहिये। सभी इन्द्रियोंका संयम रखना चाहिये। वस्त्रोंके लिये शास्त्रोंका नियम है, दो ही वस्त्र रखे। इतनेमें काम न चले तो तीन वस्त्र रखें। कानोंपर कन्ट्रोल रखना चाहिये। फालतू बातें न सुनें। वाणीसे भगवान्‌के सिवाय दूसरी बात कहे ही नहीं। मनसे परमात्माका ध्यान करना चाहिये। श्वाससे नामका जप करना चाहिये। चरणोंसे तीर्थयात्रा करनी चाहिये। भोग-सामग्रीका त्याग करना चाहिये। इस प्रकार अपना जीवन बिताना चाहिये। जितने भोग-पदार्थ हैं उनका त्याग करना चाहिये। इन पाँच यमोंको व्रत कहते हैं। बराबर इनका पालन किया जाय तो इनकी महाव्रत

संज्ञा हो जाती है। इसी प्रकार पाँच नियम हैं—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान।

शौच—बाहर-भीतरकी पवित्रता। बाहरकी पवित्रता है शरीरको, घरको साफ रखना, शुद्ध आहार करना, स्वार्थको त्यागकर पवित्र व्यवहार करना। भीतरकी पवित्रता है—अन्तःकरणकी शुद्धि, काम-क्रोधादि दोषोंको साफ करना, प्राणायामसे ये दोष नष्ट होते हैं तथा गंगा-जलपानसे भी अन्तःकरणके दोष नष्ट होते हैं।

सन्तोष—जो कुछ भगवान्‌की इच्छासे आकर प्राप्त हो, उसे भगवान्‌का भेजा हुआ पुरस्कार मानकर खूब प्रसन्न रहना चाहिये, बीमारी हो गयी तो आनन्द, मिट गयी तो आनन्द।

तप—धर्मके लिये कष्ट सहना। भारी-से-भारी आपत्ति पड़नेपर भी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। गुरु गोविन्द सिंहजीके लड़कोंने प्राणोंका त्याग कर दिया; किन्तु धर्मका त्याग नहीं किया। उनसे बादशाहने कहा कि मुसलमान बन जाओ तो तुम्हें क्षमा कर देंगे। उन्होंने स्वीकार नहीं किया फलस्वरूप उन्हें दीवारमें जीवित चुन दिया गया और वे हँसते-हँसते बलिदान हो गये।

स्वाध्याय—भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन, शास्त्रोंका स्वाध्याय, इनका मनन करना और कुछ नहीं बने तो भगवान्‌के नामका कीर्तन करते चलें। बद्रिकाश्रम जायँ तो भगवान्‌के नामका कीर्तन करते चलें।

ईश्वरप्रणिधान—अपने-आपको भगवान्‌के अर्पण कर देना और उनके स्वरूपका ध्यान करना। हर समय भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान करना चाहिये।

❑ ❑

श्रद्धासे विशेष लाभ

जो आदमी यहाँसे विदा हो जाता है, किसी भी प्रकारसे उसका पता ही नहीं लगता कि वह कहाँ गया। जब ऐसी परिस्थिति है तो जीते हुए ही ऐसी स्थिति बना लेनी चाहिये कि कुछ करना बाकी ही न रहे।

ज्ञानमार्गमें जबतक यह धारणा है कि मुझे ब्रह्मकी प्राप्ति हो गयी। मुझे कुछ कर्तव्य नहीं है, तबतक ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं हुई है। साधन करता ही रहे। प्राप्ति हो जाय तो भी करता ही रहे। ब्रह्मकी प्राप्ति होनेके बाद फिर सगाई नहीं टूटती, बढ़ता ही रहे। स्वप्न आता है तो आता रहे। नींद खुलते ही स्वप्न समाप्त हो जाता है। साधकको यह मान्यता करनी ही नहीं चाहिये कि मुझे कर्तव्य नहीं है। सगुणके विषयमें भी यह बात नहीं कहे कि मुझे भगवान्‌के दर्शन हो गये।

भगवान् कहते हैं कि मैं अविनाशी होता हुआ भी जन्म धारण करता हूँ। इसमें यही रहस्य है कि जो भगवान्‌को ऐसा समझ लेता है, वह उनसे मिले बिना रह नहीं सकता। उसे मिले बिना चैन नहीं पड़ती। ऐसे भगवान्‌से जो मिलना चाहता है उसे मदद मिलती है, फिर भी उनसे मिलनेकी इच्छा न हो, इसमें यही कहा जा सकता है कि परमात्मा ऐसे हैं यह श्रद्धा नहीं है, अन्यथा व्याकुलता होनी चाहिये। चेष्टा जितनी होनी चाहिये उतनी नहीं होती है, जो बात पुस्तकोंमें पढ़ी जाती है उस तरहकी मान्यता नहीं है, इसमें कारण श्रद्धाकी कमी ही है। भगवान् मिलते हैं यह विश्वास हो तो जी-तोड़ परिश्रम होना चाहिये। बात यही है कि भगवान्‌के अस्तित्वमें ही श्रद्धा नहीं है। इसीलिये प्रयत्नकी कमी है। शब्दोंका अर्थ तो समझ लिया, किन्तु अनुभव नहीं होनेसे काममें नहीं आता। चारों ओर बाढ़ हो, गंगाका जल चारों ओर बढ़ रहा हो तो नींद आयेगी क्या? हम चुपचाप बैठे रहेंगे क्या? यहाँ गंगाकी, भगवान्‌की, वनकी तथा

प्रवचन-तिथि—दिनांक ७-५-१९४५, सायंकाल, टीबड़ी, स्वर्गाश्रम।

सत्संगकी मदद भी है। यहाँ नाम-जप, भगवान्‌के गुणोंकी चर्चा करें। जप, ध्यान और सत्संग करें।

तीनोंमें प्रधान तो ध्यान है; किन्तु वह पराधीन है, सुगम तो जप है। 'ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप' नामकी पुस्तकके अनुसार अन्तरंग दो-चार आदमी बैठकर बातचीत करें। भगवान् हैं, उनसे कोई भी प्रेम करना चाहे, उससे वे प्रेम करते हैं। एकान्तमें बैठकर ईश्वर और महापुरुष दोके विषयमें विचार करना है। महापुरुषके बारेमें तो इसलिये विचार करना है कि हमें महापुरुष बनना है और ईश्वरके विषयमें इसलिये विचार करना है कि उनकी उपासना करनी है। महापुरुषकी उपासना नहीं करनी है। अर्जुनने भी दूसरे अध्यायमें स्थितप्रज्ञके लक्षण तथा चौदहवें अध्यायमें गुणातीत पुरुषके लक्षण पूछे।

प्रश्न उठता है कि गीतामें इनके लक्षणोंका, गुणोंका वर्णन किया गया है; किन्तु महापुरुषोंकी कितनी सामर्थ्य होती है, उनका कितना प्रभाव होता है, कितनी शक्ति होती है—यह नहीं बताया। उनके दर्शन-भाषणसे कल्याण हो जाता है, आदि बातें नहीं कहीं।

इसके बारेमें दूसरे शास्त्रोंमें बताया है। भगवान्‌ने अपना प्रभाव तो खूब कहा; किन्तु महापुरुषोंका प्रभाव नहीं कहा। कारण यही मालूम देता है कि उपास्यदेव केवल भगवान् ही हैं। लोग समझ नहीं पायेंगे तो ज्यादा गुरुडम फैलेगा, इसलिये भगवान्‌ने बचाव किया। संसारमें बहुत ज्यादा गुरुडम गुरुलोगोंने फैला रखा है। महापुरुषोंके गुणोंकी, लक्षणोंकी, आचरणोंकी आलोचना करनी चाहिये। ईश्वरका उपदेश, आचरण कल्याण करनेवाला है। ईश्वरकी उपासना कल्याण करनेवाली है। आचरण और उपदेश—ये दो चीजें तो महात्माकी भी लेनी चाहिये। उनको उपास्यदेव मानकर उनकी उपासना नहीं करनी चाहिये। संसारमें गुरु बननेके लिये बहुत लोग तैयार हैं; किन्तु योग्यता नहीं है, केवल अपने सुखके लिये गुरु बनना चाहते हैं।

❑ ❑

भगवान्‌का तत्त्व-रहस्य

परमात्माके गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यमें तत्त्व और रहस्य एक-से ही हैं, बहुत थोड़ा अन्तर है तथा गुण और प्रभाव एक जातिके हैं। प्रभाव भी एक गुण ही है। जो बात बहुत कीमती हो, छिपी हुई हो, बिना बतलाये समझमें न आये उसे रहस्य कहते हैं। जहाँ कहीं गीता, रामायण, भागवतमें भगवान्‌का रहस्य शब्दका प्रयोग किया है, वहाँ यही बात समझनी चाहिये, वह भगवान्‌का रहस्य है। रहस्य भगवान् ही जानते हैं या उनके प्रेमी भक्त या जिसे वे जनाना चाहते हैं वे जानते हैं। भगवान् लंकासे आ रहे हैं। पुष्पक-विमानपर बैठकर अपने मित्रोंको दिखा रहे हैं कि यह सरयू है, स्नान करनेसे मुक्ति देनेवाली है। यह अयोध्या मेरी जन्मभूमि है। यह परमधाम देनेवाली है। यहाँके वासी मुझे बहुत प्रिय हैं। सब वैकुण्ठकी प्रशंसा करते हैं, किन्तु अयोध्याके समान मुझे वैकुण्ठ भी प्रिय नहीं है। यह रहस्य कोई-कोई जानता है—

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद पुरान बिदित जगु जाना॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥

वहाँके लोग भगवान्‌से कितना प्रेम कर रहे हैं, जैसे समुद्र चन्द्रमाको देखकर उछाल मारता है, इसी प्रकार वहाँके लोग भगवान्‌के दर्शनोंके लिये उत्सुक हैं, मारे प्रेमके उछल रहे हैं। जैसा उत्साह, जैसा चाव अयोध्यामें है, वैसा वैकुण्ठधाममें नहीं है। इसीलिये भगवान् कहते हैं कि अयोध्या मुझे अत्यन्त प्यारी है। दूसरी बात है, यह मेरी जन्मभूमि है। वैकुण्ठ भगवान्‌की जन्मभूमि नहीं है। वैकुण्ठमें वात्सल्यभावसे प्रेम करनेवाला माता कौसल्याके समान कोई नहीं है। यह भूमि मेरे जन्मके प्रतापसे

प्रवचन-तिथि—दिनांक १०-५-१९४५, प्रातःकाल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

मुक्ति देनेवाली होगी। सदाके लिये यह कायम हो गयी। परमधाममें तो मुक्त जीव जाते हैं। परमधाम मुक्ति देनेवाला नहीं है। अयोध्या मुक्ति देनेवाली है। भगवान्‌के जन्म लेनेसे अयोध्या मुक्तिदायिनी पुरी बन गयी। वहाँकी भूमि, वहाँके वासी वैकुण्ठसे भी बढ़कर भगवान्‌को प्रिय हैं। इसमें क्या रहस्य है, यह कोई-कोई ही जानते हैं और आगेकी बात है—

छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना॥

एक क्षणमें भगवान् सबसे मिल लिये। इस बातका रहस्य किसीने नहीं जाना; क्योंकि जिससे भगवान् मिले वह समझता है कि भगवान् मुझसे ही मिल रहे हैं। यह मर्म कि भगवान् अनन्त रूप धारण किये हुए हैं इसको सब नहीं जानते; क्योंकि भगवान्‌की यह जनानेकी इच्छा नहीं थी। यह मर्मकी बात थी कि अमित रूप प्रकट किये और सबसे मिले।

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥

एक क्षणमें अपरमित रूपसे प्रकट हो गये, जो जिसके लायक था उससे उसी तरहसे मिले। जो जिस प्रकारसे मिलना चाहते थे, उससे उसी प्रकारसे मिले। सबसे मिले, किसीको बाकी नहीं छोड़ा। भगवान्‌के लिये कोई बात कठिन नहीं, भगवान् सबको जैसे नचाते हैं वैसे ही लोग नाचते हैं। सब लोग यह रहस्य कैसे जान सकते हैं—

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥

सारे संसारको भगवान् जैसे नचाते हैं, संसार वैसे ही नाचता है। हम सब पराधीन हैं। यत्किंचित् स्वाधीनता है, वह भगवान्‌की दी हुई है। उसे भी भगवान्‌के अर्पण कर दें तो आनन्द हो जाय। कठपुतलीकी तरह भगवान्‌के अधीन हो जायँ, तो बड़ा आनन्द होगा। भगवान् जैसे नचावें नाचें। कुएँपर जाकर जैसे बोलते हैं, कुआँ तेरी माँ मरी तो आवाज आती है मरी। इस प्रकार भगवान्‌के रुखसे रुख मिला दें। जैसे पतिव्रता स्त्री

अपने पतिकी छायाके मुताबिक चलती है। इसी प्रकार भगवान्के अधीन होना भगवान्की शरण होना है। जो भगवान्की शरण हो जाता है, वह भगवान्की सब बात जान जाता है। बाजीगरकी सारी कलाको झमूरा जान जाता है। संसारको रचनेवाले बाजीगरका झमूरा बनना चाहिये। भगवान्के अनुकूल होकर जैसे भगवान् नचावें नाचें। भगवान् श्रीकृष्णने जब अवतार धारण किया, गोपियाँ आदि उनके परिकर थे। साथमें लीलाके लिये प्रकट हुए थे। इसी प्रकार हम उनके परिकर बन जायँ। फिर जब वे अवतार लें, हम उनके साथ ही आवें। जो भगवान्को नहीं छोड़ता, भगवान् उसे नहीं छोड़ते। भगवान्के बिना रहना हमारे लिये लज्जाकी बात है। हम भगवान्के बिना जबतक जीते रहते हैं तबतक ही विलम्ब होता है। मछली पानीके बिना तड़पने लगती है, जब हमारी ऐसी दशा होगी तब भगवान् आये बिना नहीं रहेंगे। स्वाति नक्षत्रमें जल बरसता है, पपीहा उसे पीता है; किन्तु जमीनपर गिरे हुए जलको नहीं पीता। यह एकनिष्ठ भक्ति है।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥ (गीता ७। १७)

उनमें नित्य मुझमें एकीभावसे स्थित अनन्य प्रेमभक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है, क्योंकि मुझको तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है।

एक निष्ठा पपीहे-जैसी होनी चाहिये। मछलीमें जो तड़प है ऐसी तड़प होनी चाहिये। यह तभी होगी जब हम समझेंगे कि भगवान् हमारे प्राणोंके आधार हैं।

जैसे झमूरा बाजीगरके रहस्यको समझ जाता है, इसी प्रकार भगवान्का भक्त उनके रहस्यको समझ जाता है तथा भगवान् भी उसे अपना रहस्य बता देते हैं।

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

(गीता १८। ६४-६५)

सम्पूर्ण गोपनीयोंसे अति गोपनीय मेरे परम रहस्ययुक्त वचनको तू फिर भी सुन। तू मेरा अतिशय प्रिय है, इससे यह परम हितकारक वचन मैं तुझसे कहूँगा। तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है।

चार बातें कहीं—मेरेमें मन लगा, मेरा भक्त हो जा, मेरी पूजा कर, मुझे नमस्कार कर। यह बात पहले भी कही थी—

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥ (गीता ९। २)

यह विज्ञानसहित ज्ञान सब विद्याओंका राजा, सब गोपनीयोंका राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला, धर्मयुक्त, साधन करनेमें बड़ा सुगम और अविनाशी है।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ (गीता ९। ३४)

मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्माको मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा।

भगवान् यह तो कह सकते हैं कि तू परमात्माका ध्यान कर, यज्ञ कर, तप कर, किन्तु यह बात गुह्यतम नहीं है। अपने-आपका परिचय देना कि मैं ही साक्षात् परमात्मा हूँ, यह साधारण बात नहीं है। भगवान् अपना परिचय पाण्डवोंको नहीं देते थे; किन्तु वे ताड़ लेते थे। भगवान् अपने उपदेशके बारेमें भी कहते हैं कि यह अत्यन्त गोपनीय है। भगवान् कहते हैं कि यह उपदेश मैंने सूर्यके प्रति भी कहा था। भगवान्‌ने तो साक्षात्

बता दिया कि मैंने ही यह सूर्यके प्रति कहा था। अर्जुनने सोचा कि भगवान् तो हमारे सामने हुए हैं, सूर्यकी उत्पत्ति सृष्टिके आदिमें हुई थी। भगवान्‌ने यहाँ गुप्तरूपसे बताया था कि मैं साक्षात् परमात्मा हूँ; किन्तु अर्जुन समझे नहीं इसलिये उन्होंने प्रश्न किया। तब भगवान्‌ने कहा कि मेरे अनन्त अवतार हो गये हैं, उन सब अवतारोंको मैं जानता हूँ। तू नहीं जानता—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥ (गीता ४। ५)

हे परन्तप अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं। उन सबको तू नहीं जानता, किन्तु मैं जानता हूँ।

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥ (गीता ७। २६)

हे अर्जुन! पूर्वमें व्यतीत हुए और वर्तमानमें स्थित तथा आगे होनेवाले सब भूतोंको मैं जानता हूँ, परंतु मुझको कोई भी श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता।

इसका कारण है कि मैं साक्षात् परमात्मा हूँ। तू जीव है, प्रकृतिके अधीन है। मैं संसारको रचनेवाला हूँ, आदि बातें भगवान्‌ने कही। स्वयं अपना भेद बतलाना गोपनीय बात है। किसी अच्छे महापुरुषके पास जाकर हम पूछें कि आपका तत्त्व-रहस्य बताइये तो वे नहीं बतलायेंगे। किसी व्यापारीके पास जाकर पूछें कि आप अपना तलपट बतलाइये तो वह नहीं बतलायेगा। अपनी स्थितिकी, साधनकी बात गुप्त है। भगवान् कहते हैं कि तू मुझे अतिशय प्रिय है इसलिये तुझे कहता हूँ; अन्यथा यह बात कहनेकी नहीं है कि तू मेरी पूजा कर, मेरेमें मन लगा, मेरा भक्त बन जा, मुझे नमस्कार कर। भगवान् संसारमें छिपकर रहते हैं, लोग उन्हें पहचान नहीं पाते। राजा बलिके यहाँ भगवान् ब्राह्मणका रूप धारण करके गये। गुरुने कहा कि ये भगवान् हैं। बलिने कहा ठीक है और अच्छी बात है। उन्होंने

अपने गुरुकी बातकी अवहेलना कर दी और कहा कि भगवान् स्वयं लेने आये हैं यह अच्छी बात है, मैं दान दूँगा। भरतजीने अपनी माताकी बातकी अवहेलना कर दी। क्या उन्हें पाप लगा? जहाँ भगवान्का प्रकरण हो, वहाँ इन सबकी अवहेलना करनेसे पाप नहीं लगता। ब्राह्मणपत्नियोंने, गोपियोंने अपने पतियोंकी अवहेलना कर दी, नीतिशास्त्रके अनुसार यह बुरी बात है, परन्तु भगवत्प्रेममें नीति, धर्म आदिका कोई मुकाबला नहीं है। एक तो होता है धर्म और एक होता है परमधर्म। भगवान्की भक्तिका विषय परमधर्म है।

प्रभावका अभिप्राय यह है कि कहीं-कहीं भगवान् अपने प्रभावको विकसित करके दिखा देते हैं; किन्तु समझना चाहिये कि सारे संसारमें जो कुछ प्रभावशाली वस्तु है, वह भगवान्का ही प्रभाव है। अग्निमें जो तेज है, सूर्यमें जो तेज है, वह भगवान्का ही है—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥ (गीता १५। १२)

सूर्यमें स्थित जो तेज सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमामें है और जो अग्निमें है—उसको तू मेरा ही तेज जान।

भगवान् अपने प्रभावके एक अंशसे सारे संसारको धारण किये हुए हैं। जैसे बिजलीके तारमें बिजली नहीं दीखती, उसमें छिपी हुई है, इसी प्रकार सारे संसारमें भगवान् छिपे हुए हैं। प्रश्न उठता है कि बिजली छूनेसे तो करेण्ट मारता है, संसारको छूनेसे असर क्यों नहीं होता। इसका उत्तर यह है कि यदि तुम काठपर खड़े हो जाओगे तो तुमपर बिजलीका असर नहीं पड़ेगा। इसी तरह अश्रद्धारूपी काठपर खड़े होनेसे हमें भगवान् नहीं दीखते। नेत्रोंपर अश्रद्धाका चश्मा चढ़ा रहनेके कारण असर नहीं होता। मायाका पर्दा होनेसे हम परमात्माको नहीं देख पाते। बिजलीके

हम बहुत नजदीक हैं, किन्तु काठका पर्दा होनेसे हमारे ऊपर बिजलीका असर नहीं होता। हमारी श्रद्धा होनेके बाद भगवान् रुक नहीं सकेंगे, जैसे प्रह्लादके लिये खम्भेसे प्रकट हो गये, गोपियोंके लिये वनमें प्रकट हो गये। भगवान्‌का ऐसा अद्‌भुत प्रभाव है। किसी महात्मा या देवतामें प्रभाव देखते हैं, यह भगवान्‌का ही प्रभाव है। एक बार देवासुर-संग्राममें विजयी होनेपर देवताओंमें यह अभिमान आ गया था कि हमने विजय प्राप्त की है। देवताओंका मिथ्याभिमान दूर करनेके लिये भगवान्‌ने अपनी लीलासे ऐसा अद्‌भुत रूप प्रकट किया जिसे देखकर देवताओंकी बुद्धि चकरा गयी। देवताओंने उस अद्‌भुत पुरुषका पता करनेके लिये अपने अगुआ अग्निको भेजा। अग्निको भगवान्‌ने उनका परिचय पूछनेके बाद एक तृण जलानेको कहा, किन्तु अग्नि तृणको जला नहीं सके। अग्निके बाद वायु आये तिनकेको नहीं उड़ा सके। इसके बाद गर्वोन्मत्त इन्द्र वहाँ आये तब भगवान् अन्तर्धान हो गये। इन्द्रको अन्तरिक्षमें भगवती उमा दिखायी दीं। इन्द्रके विनयपूर्वक पूछनेपर उन्होंने बताया कि साक्षात् ब्रह्मने ही असुरोंपर विजय प्राप्त की है। तुमलोग निमित्तमात्र होकर भी गर्वोन्मत्त हो रहे हो, इसलिये तुम्हें चेतानेके लिये भगवान्‌ने यह लीला की है।

इस प्रकार भगवान्‌ने दिखा दिया कि वह तुम्हारा प्रभाव नहीं है। इसी प्रकार अर्जुनमें जो प्रभाव था, वह भगवान्‌का ही था। भगवान्‌के परमधाम सिधारनेके बाद डाकुओंने उन्हें लूट लिया, वे शोकातुर होकर घर आये। युधिष्ठिरने पूछा कि तुम्हारी ऐसी दशा क्यों है? क्या भगवान् परमधाम चले गये? अर्जुनने कहा आप जो कहते हैं वही बात है। फिर वेदव्यासजीके पास गये तब उन्होंने कहा अब तुमलोग यहाँसे विदा हो जाओ। अन्यथा छोटा-सा शत्रु आकर तुम्हारा विनाश कर डालेगा। तुम्हारेमें जो शक्ति थी वह भगवान् श्रीकृष्णकी ही थी। आपमें, मुझमें, गंगामें

या संसारमें जो तेज है, प्रभाव है वह सब भगवान्‌का ही है। जो अभिमान कर लेता है कि यह मेरा है, भगवान् उसमेंसे अपना आकर्षण कर लेते हैं। तब वह देवताओंकी तरह लज्जित होता है। आप जो-जो प्रभाववाली वस्तु देखें, वहाँ भगवान्‌को याद करें कि यह भगवान्‌का प्रभाव है। अर्जुनने पूछा कि मैं कहाँ-कहाँ आपका चिन्तन करूँ? तब भगवान्‌ने कहा कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो मेरेसे रहित हो। वाल्मीकिजीसे भगवान्‌ने पूछा कि मैं कहाँ रहूँ? तब उन्होंने कहा कि ऐसी कौन-सी जगह है जहाँ आप न हों। भगवान् तो परीक्षा लिया करते हैं। अर्जुनसे पूछा—तू समझ गया क्या? तब अर्जुनने कहा—मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। शरण हूँ यह तो पहले भी कहा था '**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्**' किन्तु वास्तवमें शरण नहीं हुआ था, क्योंकि उसी समय कहा था—'**न योत्स्य**' हे गोविन्द! मैं युद्ध नहीं करूँगा। किन्तु जब यह कह दिया—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥ (गीता १८।७३)

हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है, अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ, अतः आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

तब भगवान्‌ने जान लिया कि यह अब समझ गया। संजय भगवान्‌के संवादको स्मरण कर रोमांचित हो रहे हैं। धृतराष्ट्रको बता रहे हैं, किन्तु धृतराष्ट्रके श्रद्धा नहीं थी, वहाँ अश्रद्धारूपी काठ बीचमें था। अश्रद्धाका परदा हटनेके बाद जैसे संजय वैसे ही हमलोग। जहाँ कहीं प्रभाव दीखता है वह भगवान्‌का ही प्रभाव है, हमें उसमें भगवान्‌का दिग्दर्शन करना चाहिये। पंखा, ट्राम सब बिजलीसे चलते हैं। इसी प्रकार जो कुछ हो रहा है यह नाटक है, इसके पीछे भगवान् हैं। यह संसार भगवान्‌की

लीला है, सारी चेष्टा भगवान्‌से हो रही है। सूतकी मिलमें कितने करघे चलते हैं, सब बिजलीसे चलते हैं, इसी प्रकार जो कुछ कार्यवाही हो रही है, लीला हो रही है यह भगवान्‌का प्रभाव है। वृक्षका पत्ता भी भगवान्‌की मर्जीके बिना नहीं हिलता। जो कुछ दीखता है, सब भगवान्‌का स्वरूप है। आपको यदि संसार दीखता है तो आपके मोतियाबिन्द हो गया उसका इलाज करना चाहिये। अन्तःकरणमें आवरणरूपी पर्दा है उसे हटाना चाहिये। वह सत्संग करनेसे तथा सद्ग्रन्थोंका अनुशीलन करनेसे हटता है। जैसे साबुनसे कपड़ा साफ होनेसे चमकने लगता है, इसी प्रकार अन्तःकरण जब साफ होकर चमकने लगेगा फिर जहाँ देखें वहाँ राम-ही-राम दीखने लग जायँगे।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ (गीता ६। ३०)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

जैसे आकाशमें हजारों बादल हैं। इससे यह समझमें आता है कि आकाशमें किसी अंशमें बादलोंका समूह है तथा बादलोंका एक अणु भी खाली नहीं जहाँ आकाश न हो। इस तरह भगवान् सारे संसारमें ओत-प्रोत हैं। आत्माका न उस परमात्मासे कभी वियोग हुआ और न हो सकता है। भक्तिमार्गमें तथा ज्ञानमार्गमें भी यही बात है। भक्तिके प्रकरणमें भगवान् उसे देखते रहते हैं और वह भगवान्‌को देखता रहता है। आकाश तो जड़ है वह बादलोंको नहीं देख सकता; किन्तु परमात्मा चेतन हैं। जो परमात्माको सर्वत्र देखता है उसका परमात्मासे वियोग हो ही कैसे सकता है। यह रहस्यकी बात है। जिसे समझमें आ गयी उसे परमात्माका दर्शन हो गया।

भगवान् कहते हैं—जो मेरे तत्त्वको जान जाता है, जिस स्वरूपको वह चाहता है, उसी स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। सगुण-निर्गुण सभीका तत्त्व समझना चाहिये। यह भेद भक्तिसे तथा अभेद भक्तिसे समझा जाता है। उपासना इसमें प्रधान है और किसीकी शक्ति नहीं जो समझा सके।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥ (गीता १८।५५)

उस परा भक्तिके द्वारा वह मुझ परमात्माको मैं जो हूँ और जितना हूँ, ठीक वैसा-का-वैसा तत्त्वसे जान लेता है तथा उस भक्तिसे मुझको तत्त्वसे जानकर तत्काल ही मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥ (गीता ११।५४)

हे परन्तप अर्जुन! अनन्य भक्तिके द्वारा इस प्रकार चतुर्भुजरूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ (गीता १०।१०)

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

भगवान्‌के तत्त्व-रहस्यको समझना और भगवान्‌को प्राप्त होना एक ही बात है। भगवान्‌के गुण-प्रभावकी बात सुनकर आप प्रभावित हो जायँ तो भगवान्‌के मिले बिना आप रह नहीं सकते, व्याकुल हो उठते। भगवान्‌के रहस्यकी बात समझमें आ जाती तो प्रेम, शान्ति, आनन्दकी जागृति हो जाती।

❑❑

भगवान्‌की परीक्षा—विपत्ति

भरतजी कहते हैं—

जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥

हे नाथ! आप मेरे आचरणोंकी तरफ देखें तो सौ करोड़ कल्पमें भी मेरा निस्तार नहीं होगा, किन्तु आप दयाके सागर हैं, आपकी तरफ देखता हूँ तो आश्वासन होता है।

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥

आप दासोंके अवगुणोंकी तरफ देखते ही नहीं। यही एक बचाव है। आप दीनोंके बन्धु हैं, आपका स्वभाव बड़ा कोमल है। इसलिये मुझे आपके मिलनेका पूरा विश्वास है। इसी प्रकार हमें भी एकान्तमें बैठकर मिलनेकी उम्मीद करनी चाहिये। भगवान् परीक्षा लिया करते हैं, उस परीक्षामें जो पास हो गया उसका बेड़ा पार है। हमलोगोंको अनुकूल और प्रतिकूल दो अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं। अनुकूलतामें प्रसन्नता सबके होती है। प्रतिकूलतामें जो दुःख होता है, वह सहन नहीं होता। हमारा शत्रु यदि हमारे गुणोंकी चर्चा करे तो हमें अच्छा लगता है। अवगुणोंकी चर्चा करे तो चाहे हमारा बाप ही हो हम उसे बाहर निकलवाना चाहते हैं। यह अग्नि-परीक्षा है। भोले-भाले लोग इस बातको नहीं समझते। हमारे प्रतिकूल कोई घटना होती है उसे कहीं तो भगवान् करते हैं, कहीं करवाते हैं। विपरीत घटनामें भगवान्‌का दर्शन होता है। इस रहस्यको कुन्तीदेवी जानती थीं, इसीलिये उन्होंने विपत्तिका वरदान माँगा था—

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

(श्रीमद्भागवत १।८।२५)

प्रवचन-तिथि—दिनांक १०-५-१९४५, दोपहर।

हे जगद्गुरु श्रीकृष्ण! हमें बारम्बार विपत्तियाँ आती रहें; जिससे हमें बारम्बार आपका दर्शन होता रहे। आपके दर्शनके फलस्वरूप पुनर्जन्मका दर्शन नहीं करना पड़ता अर्थात् आपका दर्शन होनेपर संसारका चक्र छूट जाता है।

भगवान्के दर्शनसे भी ज्यादा महत्त्व भगवान्की स्मृतिको देना चाहिये। भगवान्का ध्यान सर्वोत्तम है। विपत्तिमें भगवान्का ध्यान होता है। जितनी विपरीत घटना है, भगवान् कहते हैं मेरे द्वारा होती है। मनके विपरीत घटनामें परीक्षा होती है। कोई भी काम हो समझना चाहिये कि भगवान्की मर्जीसे होता है। चैतन्य महाप्रभुने कहा है—

जो करे आमार आस तार करी सर्वनाश।
तऊ न छाड़े आमार आस तार आमी दासेरदास॥

प्रह्लादकी बड़ी कड़ी परीक्षा ली। प्रह्लाद पास हो गये तब भगवान् खम्भेसे प्रकट हो गये। भगवान्ने प्रह्लादसे कहा—मेरे आनेमें विलम्ब हो गया इसलिये मैं क्षमा-प्रार्थना करता हूँ। भगवान् बड़ी कड़ी परीक्षा लेते हैं। आजकल कलियुगमें कड़ी परीक्षा नहीं लेते; क्योंकि राजा मयूरध्वजने भगवान्से यह वर माँगा था कि आगे कलियुग आ रहा है, ऐसी परीक्षा मत लीजियेगा। अर्जुनके अभिमान आ गया था कि मेरे-जैसा आपका भक्त नहीं होगा। भगवान्ने कहा बहुत भक्त हैं। अर्जुनने कहा, दिखाइये। भगवान् अर्जुनके साथ एक घोर जंगलमें जाकर एक बाघको पकड़ लाये तथा उसके साथ राजा मयूरध्वजके पास गये। मयूरध्वजद्वारा सेवा पूछनेपर भगवान्ने कहा कि पहले हमारे बाघको तृप्त करो। यह नरमांस खाता है। जो तुम्हारा सबसे प्रिय हो उसे इसे अर्पण करो। पुत्रको राजाने बुलाया। पुत्र बड़ा प्रसन्न हुआ कि ऐसा अवसर कब मिलेगा। भगवान्ने राजा-रानीको आरेद्वारा पुत्रको बीचसे पूरा चीरकर एक हिस्सा

सिंहको देनेके लिये कहा। चीरते समय दूसरे हिस्सेकी आँखसे आँसू टपक पड़े। भगवान्‌ने कहा कि दुःखपूर्वक दिया हुआ हमारा सिंह नहीं खायेगा। इसपर राजाने कहा कि इसको दुःख इस बातका है कि यह हिस्सा अतिथि-सेवामें काम नहीं आया। सिंहके खा चुकनेके बाद भगवान्‌ने भोजन बनाकर पाँच थालियोंमें परोसनेका आदेश दिया। आदेशानुसार पाँच थालियाँ परोसी गयीं। भगवान्‌ने राजकुमार रतनकुँवरको पुकारा। फिर भगवान्‌का भेद खुल गया। भगवान्‌ने राजासे वर माँगनेके लिये कहा। राजाने कहा—प्रभो! अब कलियुग आ रहा है। अब ऐसी परीक्षा किसीकी न लें। हमें सावधान रहना चाहिये। कोई भी प्रतिकूल परिस्थिति प्राप्त हो तो समझना चाहिये कि भगवान् परीक्षा ले रहे हैं। भगवान्‌का स्वभाव बड़ा कोमल है और वज्रसे भी कठोर है। दोनों प्रकारका बर्ताव करते हैं। पहले तो बड़ा कठोर रूप धारण करते हैं, फिर सौम्य रूपमें आ जाते हैं। भगवान्‌ने पहले तो कठोर होकर बालिको मार डाला, फिर बालिने मर्मकी बात कही तो पानी-पानी हो गये।

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि॥

हे मर्यादा पुरुषोत्तम राम! मैं पापी जरूर था; किन्तु अब भी पाप बाकी रह गये क्या? इतनी बातसे ही भगवान् इतने नर्म हो गये।

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपानिधाना॥
जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी॥
मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा॥

पहले कितनी कठोरता कि एक ही बाणसे बालिको मार

डाला। फिर उसके सिरपर हाथ रख दिया। मारनेसे बढ़कर कठोरता क्या है और मस्तकपर हाथ रखनेसे बढ़कर कोमलता क्या है? सुग्रीवको भगवान्‌ने कहा था—

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।

फिर बालिसे कहते हैं, तुझे अमर बना दूँ। भगवान् हमलोगोंकी परीक्षा लेते हैं। जो हँसता रहता है, वह संसारसे पार हो जाता है। प्रह्लादको आगमें डाल देते हैं तो भी वे हँसते रहते हैं। भगवान् जब प्रकट हुए तब उनका विकरालरूप था। प्रह्लाद जाकर गोदमें बैठ गये। भगवान्‌ने अपने भक्तोंके लक्षण बताते हुए कहा है—

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ (गीता १२। १४)

जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है—वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

सेवकको क्या भय, वह तो सदा निर्भय रहता है। भगवान् खूब कड़ी परीक्षा लेते हैं। राजा युधिष्ठिरकी बड़ी कड़ी परीक्षा ली। वे उत्तीर्ण हुए। द्रौपदीकी परीक्षा हुई, वे उत्तीर्ण हो गयीं। हमलोगोंकी भी समय-समयपर भगवान् परीक्षा लेते रहते हैं। कड़ी परीक्षामें आप पास हो जायँगे तो भगवान् मिल ही जायँगे, भगवान् न मिलें तो मुझे आकर उलाहना देना। भगवान्‌के मिलनेका यही उपाय है कि कोई भी प्रतिकूल घटना प्राप्त हो उसमें न घबरायें। उस विपत्तिको सम्पत्ति समझें। ऊपरी कार्यवाही नीतिके अनुसार करते रहें, मनमें विकार नहीं होने देना चाहिये।

भगवान्‌की लीला हो रही है। हमें भी उसमें शामिल हो जाना चाहिये। झमूरा बाजीगरकी हाँ-में-हाँ मिलाता है, इसी प्रकार हमें

भगवान्‌के साथ लीला करनी है, हाँ-में-हाँ मिलाना है। अर्जुनसे भगवान् लीला करवा रहे हैं। अर्जुन कहते हैं—

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥ (गीता २।४)

हे मधुसूदन! मैं रणभूमिमें किस प्रकार बाणोंसे भीष्मपितामह और द्रोणाचार्यके विरुद्ध लड़ूँगा? क्योंकि हे अरिसूदन! वे दोनों ही पूजनीय हैं।

वही अर्जुन बादमें बाण चलाता है। जैसे भगवान् कराते हैं वैसे करता है। भीष्म, द्रोण साक्षात् पितामह और गुरु हैं, उनपर बाण चलाना कोई साधारण बात नहीं है। भगवान् कहते हैं, वही धर्म है। श्रद्धा होनेसे इतनी सुगम बात है। बंदर बाजीगरके अधीन हो जाता है। जिस तरह बाजीगर नचाता है, नाचता है। बंदर भी अनुकूल हो जाता है फिर हमलोग बंदरोंसे भी गये बीते क्यों रहें। ज्ञानमार्गके लिये यह उदाहरण है—एक लड़की है। उसका पीहरमें नाम झिलमिली है। शादी हुई तो प्रभुकी बहू नाम हो गया। एक ही दिनमें नाम बदल गया। अब प्रभुकी बहू नामसे बुलाते हैं। आपने अपना नाम रख रखा है बद्रीदास लोहिया, उसकी जगह अपना नाम सच्चिदानन्दघन परमात्मा कर लें, आप कहें कि ऐसा अभ्यास कैसे हो? जैसे झिलमिलीने कर लिया। भगवान् हुक्म दें, अपने धनको कुएँमें डाल दो, झट डाल दें। भगवान्‌ने कहा घरमें आग लगा दो, झट लगा दें। भगवान् कहें—नरकमें जाना होगा, बड़ी अच्छी बात है। भगवान् कहें—वैकुण्ठमें जाना होगा, बड़ी अच्छी बात है। जो कहें उसीमें तैयार रहें, डरे नहीं। कठपुतली तो जड़ है, तुम चेतन होकर जड़की तरह हो जाओ। प्रह्लादकी तरह हमें भगवान्‌पर निर्भर होना चाहिये। भगवान् बड़े दयालु हैं, बड़े सुहृद् हैं, यह समझकर उनपर निर्भर होना चाहिये। भगवान् हर समय हमारी परीक्षा

लेकर हमें पक्का बनाते हैं। भगवान् अर्जुनको आज्ञा देते हैं—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥ (गीता २। १४)

हे कुन्तीपुत्र! सर्दी-गर्मी और सुख-दुःखको देनेवाले इन्द्रिय और विषयोंके संयोग तो उत्पत्ति, विनाशशील और अनित्य हैं; इसलिये हे भारत! उनको तू सहन कर।

ज्ञानमार्गमें इसे नाशवान् बताते हैं और भक्तिमार्गमें कृपा बताते हैं। कृपा समझमें आ जाय तो बेड़ा पार है। भगवान्‌की तरह भक्त भी परीक्षा लिया करते हैं। भगवान् तपाकर पक्का करते हैं। जैसे गुरु अपने शिष्यको मार-पीटकर पक्का बनाते हैं, ऐसे ही भगवान् पक्का करते हैं। एक गुरुजीके यहाँ लड़के पढ़ा करते थे। उनके यहाँ एक राजाका भी लड़का था। किसीने आकर कहा इसे राजा साहब राजा बनायेंगे। गुरुजीने उसकी परीक्षा लेनेके लिये दूसरे लड़कोंको सिखा दिया। लड़कोंने उसे मारा, गालियाँ दीं, गुरुजीने भी उसीके बेंत लगवाये। राजाने गुरुजीको कैदमें डाल दिया। बादमें राजाने पूछा कि आपने ऐसा क्यों किया? गुरुजीने कहा, जब मुझे इसके राजा बननेकी बातका पता लगा, तब मैंने इसे ताड़ना इसलिये दिलवायी ताकि इसे अनुभव हो जाय कि दूसरोंको ताड़ना देनेमें कितना कष्ट होता है, जिससे किसीको दण्ड देते समय ध्यानमें रहे। कड़ी परीक्षा होती है तो हम भगवान्‌को कोसने लग जाते हैं।

गुरुकी दया क्रोधके रूपमें राजाके लड़केको दीखी, हमें भी भगवान्‌की दया क्रोधके रूपमें दीखे तो इसमें क्या आश्चर्य है। एक लड़का दूसरे लड़केको मारकर माँकी गोदमें आकर बैठ गया। दूसरा लड़का जिसे मारा था भागकर लाठी लेकर आया और कहा कि मैं इसे मारूँगा। माँने देखा यह जरूर मारेगा। अपने लड़केसे पूछा कि तू इसे मारकर आया है क्या? लड़केने कहा

कि पहले इसने मुझे गाली दी थी। माँने अपने लड़केको थप्पड़ लगाया। तब उस दूसरे लड़केने कहा कि और मत मारो। थोड़ी देर तो वह रोया फिर चुप हो गया। सोचा कि माँकी मार तो हलकी है, उसकी मारसे तो बच गये। इसी प्रकार भगवान् हमें दूसरोंकी मारसे बचानेके लिये मारते हैं, फिर यमराजकी मार नहीं पड़ेगी। जितनी मार भगवान् मारें हमें हँसना चाहिये कि मारें, और मारें। भीष्मजी महाराज शरशय्यापर पड़े हैं। वे कहते हैं जितने अपराध मैंने किये हैं वे सब रोगरूपसे आकर अपना ऋण चुका लें। मैं चला जाऊँगा फिर ऋण कौन चुकायेगा। हमें यही समझना चाहिये। भगवान् इसी शरीरमें दण्ड भुगता दें तो बहुत आनन्दकी बात है। माफी नहीं माँगे। हरिदासजीके बेंत मारे गये, वे 'हरि बोल' 'हरि बोल' ही करते रहे। निर्दयी काजीको भी दया आ गयी और उन्हें छोड़ दिया। हरिदास मार पड़ते समय प्रसन्न होते रहे कि मेरी परीक्षा हो रही है। वे हरिदास गौरांग महाप्रभुके भक्तोंमें एक नम्बरके भक्त गिने जाते थे।

दैवेच्छासे कोई विपरीत घटना आकर प्राप्त हो तो प्रसन्न होना चाहिये। जब साधक अभिमान करता है तब भगवान् हँसते हैं। जब जमीनके लिये लड़ता है तब जमीन हँसती है कि कितने मूर्ख हैं। अपनी-अपनी करते सब मर गये। हम प्रत्येक प्रतिकूल घटनामें भगवान्‌की दयाका अनुभव करें, यह बड़ा सीधा मार्ग है। अनिच्छा, परेच्छासे यदि संकटके पहाड़ हमपर टूटें तो समझो भगवान् मिलनेवाले हैं। बादल हो, गर्मी हो तो अनुमान लगाया जाता है कि पानी बरसनेवाला है, हमें डटे रहना चाहिये; घबड़ाना नहीं चाहिये। भगवान्‌के प्रत्येक विधानमें दया-ही-दया देखनी चाहिये। समझमें नहीं आये तो भी भगवान्‌की दया ही समझनी चाहिये। हर एक विपत्तिमें यह भाव करना चाहिये कि यह भगवान्‌की लीला है, पुरस्कार है। हँसनेके स्थानपर लोग रोते

हैं। रुपया, कुटुम्ब बढ़े तब रोना चाहिये। वहाँ तो लोग हँसते हैं। जिसे आप सम्पत्ति समझते हैं वह विपत्ति है। उलटा मार्ग है। मानको अपमानके समान और निन्दाको स्तुतिके समान समझनेसे भगवान् जल्दी आ जायँगे। ऐसा नहीं कर सको तो सबमें आनन्द-ही-आनन्द समझो। यह स्थिति बनानी चाहिये, फिर भगवान् मिले बिना नहीं रह सकेंगे।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥ (गीता ५।२९)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपोंका भोगनेवाला, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है। हेतुरहित प्रेम करनेवाले प्रभु और उनके भक्त दो ही होते हैं। भक्तोंके लक्षणमें भगवान्‌ने बताया है—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥ (गीता १२।१३)

सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित, सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहंकारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है; अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है। कोई उनके साथ कैसे ही द्वेष करे, वे क्षमा ही करते हैं। यह सब बातें भक्तोंमें और भगवान्‌में रहती हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

भगवान् गीतामें कहते हैं—

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥

सभी भूतोंके हितमें रत व्यक्ति मुझे ही प्राप्त होता है। भगवान्‌के समान कोई है ही नहीं।

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु कोउ नाहीं॥

हमें पता लग जाय कि हमारा राजा सुहृद् है तो शान्ति मिल जाती है। हमारे प्रभु तो सुहृद् हैं ही, उनकी सुहृदताको जाननेवाला खुद सुहृद् बन जाता है। भगवान् कहते हैं—

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥ (गीता ४।१४)

कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिये मुझे कर्म लिप्त नहीं करते—इस प्रकार जो मुझे तत्त्वसे जान लेता है, वह भी कर्मोंसे नहीं बँधता।

भगवान् सारे भूतोंके सुहृद् हैं, हम भी सारे भूतोंके सुहृद् बन जायँ। फिर भगवान् हमारे पीछे-पीछे फिरेंगे। भगवान्‌की प्रतिज्ञा है कि जो सुहृद् होते हैं, मैं उनके पीछे-पीछे फिरता हूँ। इसमें कठिनता ही क्या है। कठोर बननेमें कठिनता है। हम सुहृद् बनें। इस श्लोकके अनुसार अपना जीवन बनायें—

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ (गीता १२।१४)

जो योगी निरन्तर सन्तुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है—वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

भगवान्‌में बहुत-से गुण हैं। क्षमा, शान्ति, समता आदि बहुत-से भाव हैं। उनमेंसे एक-एक गुणको लेकर मुग्ध होना चाहिये। ऐसे प्रभुको छोड़कर संसारके विषय-भोगोंमें जीवन बिताना एकदम मूर्खता है। प्रभुका स्वरूप अलौकिक अमृतमय है। उन्हें छोड़कर हम क्या कर रहे हैं। संसारके भोग क्षणभंगुर, नाशवान् हैं। वह सुख नहीं विष्ठाका ढेर है। कूकर-सूकरके भोगोंमें और इन भोगोंमें क्या अन्तर है। भोगोंसे वैराग्य करके प्रभुमें मन लगाना चाहिये।

❑ ❑

तत्त्वज्ञान

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥ (गीता १३। ३०)

साधन करनेवाला साधक जिस कालमें भूतोंके पृथक्-पृथक् भावोंको एक परमात्मामें ही स्थित देखता है और एक परमात्मासे सबका विस्तार देखता है तब परमात्माको प्राप्त हो जाता है। जैसे जाग्रत् पुरुष स्वप्नके संसारके नाना पदार्थोंको अपनी आत्मामें ही देखता है, आत्माके अन्तर्गत देखता है, तब आत्माको प्राप्त हो जाता है। अर्थात् वह समझता है कि नाना प्रकारके पदार्थ मुझसे ही थे। मेरे सिवाय कोई दूसरी चीज थी ही नहीं। नाना प्रकारके पृथक्-पृथक् आकृतिवाले सारे आभूषण स्वर्णसे ही पैदा होते हैं, स्वर्णमें ही स्थित हैं और गलनेके बाद स्वर्ण ही बन जाते हैं। स्वर्णके सिवाय कोई वस्तु नहीं है।

विद्या पढ़नेसे यदि अभिमानकी वृद्धि हुई तो समझना चाहिये कि उसने विद्या नहीं पढ़ी, अविद्या पढ़ी है। देहमें आत्मबुद्धि ही तो अविद्या है। जब मनुष्यको ज्ञान होता है तब अहंकारका नाश हो जाता है। जबतक लेशमात्र भी अहंकार है तबतक वहाँ अज्ञान है। अविद्याका नाश होनेके बाद अहंकार—अभिमान नहीं रहता। ज्ञानके सिद्धान्तमें यही बात है कि जो कुछ यावन्मात्र है, सब परमात्माका ही स्वरूप है। वह उसीमें स्थित है, उसीमें विलीन हो जाते हैं। उपनिषदोंमें बराबर यही उपदेश दिया गया है।

जो कुछ प्रतीत होता है आनन्द-ही-आनन्द है। आनन्द ब्रह्मसे भिन्न नहीं है, इसलिये जो कुछ भी है ब्रह्म ही है। सारे भूत-प्राणी ब्रह्ममें ही हैं, नाम-रूप कल्पना है। ब्रह्मसे ही सबकी उत्पत्ति समझता है। वह ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। इन श्रुतियोंका

प्रवचन-तिथि—वैशाख शुक्ल १, संवत् २००२, प्रात:काल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम (पूर्वार्ध)।

जो भाव है, वही गीतामें भगवान्‌ने अर्जुनको उपर्युक्त श्लोक (गीता १३। ३०)-में बताया है।

गीताके १३वें अध्यायमें भगवान्‌ने ज्ञानका उपदेश दिया है, जो कुछ है वह परमात्माका स्वरूप है। जो कुछ प्रतीत होता है उसकी सत्ता नहीं है। इस प्रकार सबको बाध करके जो बचता है, वह परमात्माका स्वरूप है। भगवान् कहते हैं—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥ (गीता १३। २७)

जो सारे पदार्थोंमें परमात्माको सम देखता है, जैसे बादलोंके अनन्त समूहमें आकाशको बादलोंमें सम देखता है। परमात्माके स्थानमें आकाश, भूतोंके स्थानमें बादल, सबके विनाश होनेपर जो परमात्माको नित्य देखता है। उसका देखना ही यथार्थ है। इसी प्रकार सारे भूतोंके नाश होनेपर भी परमात्माका नाश नहीं होता। सबका अभाव होनेपर भी परमात्मा बच रहता है। इस प्रकारका देखना ही यथार्थ देखना है।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ (गीता ७। १९)

बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।

इस श्लोककी ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग दोनोंमें गुंजाइश है। चौरासी लाख योनियोंमें मनुष्य-जन्म ही अन्तिम जन्म है। इस मनुष्य-शरीरको पाकर ज्ञानी अद्वैतवादी महात्मा मेरी शरण आता है। एक परमात्माके सिवाय कोई वस्तु नहीं है। इस प्रकारका अनुभव करना ही परमात्माकी शरण होना है। वह महात्मा अति दुर्लभ है। यह अर्थ ज्ञानके सिद्धान्तसे है। भक्तिके सिद्धान्तसे यह अर्थ है कि यज्ञ, दान करते-करते भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति

उत्पन्न होती है तो वह सर्वत्र वासुदेव श्रीकृष्णका अनुभव करता है। अथवा यह अर्थ भी ले सकते हैं, बहुत जन्मोंके अन्तमें जब भगवान् कृपाकर मनुष्य-शरीर देते हैं तब वह सबको भगवान् वासुदेवस्वरूप ही देखता है, वह मेरा भक्त, मैं स्वामी, इस प्रकार मुझे भजता है। मेरे स्वरूपका सेव्यभावसे अनुभव करता है।

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

उपर्युक्त अर्थ अनन्य भक्तिके अनुसार है, ज्ञानी भक्तकी भगवान् यह विशेषता बताते हैं—

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥

(गीता ७। १७-१८)

उनमें नित्य मुझमें एकीभावसे स्थित अनन्य प्रेमभक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है, क्योंकि मुझको तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है। ये सभी उदार हैं, परंतु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है, ऐसा मेरा मत है; क्योंकि वह मद्‌गत मन-बुद्धिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम गतिस्वरूप मुझमें ही अच्छी प्रकार स्थित है।

भक्तिके सिद्धान्तमें स्वामी-सेवकभावसे अनुभव करना है। ज्ञानमार्गमें जो कुछ है, सब परमात्माका स्वरूप है। दोनों ही प्रकारके साधन हैं। ज्ञानके सिद्धान्तका यही मूल सिद्धान्त है कि तुम एकता करो। किसी भी नाम-रूपको एक साँचेमें ढाल दो। फिर जो फल मिलेगा वह असली प्राप्ति हो जायगी। साधनको सिद्धान्तका रूप दो। जबतक मान्यता है तबतक साधन है। चाहे ऐसी मान्यता कर लो कि जो कुछ है परमात्माका स्वरूप है, चाहे

ऐसी कर लो जो दिखायी देता है वह नहीं है, सबको बाध करके जो बचता है वह परमात्माका स्वरूप है। समता करो चाहे एकता करो। तात्पर्य एक ही है। इस समय समता, एकता अलग दीख रही है; किन्तु असली प्राप्ति होनेके बाद तीनों एक ही हो जायँगे, अलग नहीं रहेंगे। जिस प्रकार सत्, चित्, आनन्द अलग-अलग दीखते हैं, किन्तु वास्तवमें एक ही हैं। वाटर, अप्, जल, सब जलके नाम हैं। ज्ञान एवं भक्ति सबका अन्तिम फल एक ही होता है।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥
सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥
बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥

(गीता १३। १२—१५)

जो जाननेयोग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य परमात्माको प्राप्त होता है, उसको भलीभाँति कहूँगा। वह अनादिवाला परमब्रह्म न सत् ही कहा जाता है, न असत् ही। वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर कानवाला है; क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है। वह सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है, परन्तु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित है तथा आसक्तिरहित होनेपर भी सबका धारण-पोषण करनेवाला और निर्गुण होनेपर भी गुणोंको भोगनेवाला है। वह चराचर सब भूतोंके बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर-अचररूप भी वही है और वह सूक्ष्म होनेपर अविज्ञेय है तथा अति समीपमें और दूरमें भी स्थित वही है।

साधनावस्थामें साधक जिसको लक्ष्य करके साधन करता है, उसका फल जो मिलता है वह असली चीज है। साधन-कालमें मान्यता होती है, असली स्वरूपकी उपासना नहीं हो सकती। इसलिये बुद्धिसे मिला हुआ जो स्वरूप है उसका वर्णन भगवान् करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि बुद्धि-मिश्रितका वर्णन किया है, उसका फल है ब्रह्मकी प्राप्ति। उस शुद्ध ब्रह्मको ही गुणोंके साथ सम्बन्ध करके कहेंगे। उसका सत्-असत् किसी प्रकारसे वर्णन नहीं हो सकता।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥

(गीता ८। २०)

उस अव्यक्तसे भी अति परे दूसरा अर्थात् विलक्षण जो सनातन अव्यक्तभाव है, वह परम दिव्य पुरुष सब भूतोंके नष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं होता।

इतनी बात स्पष्ट है कि जो इस विषयके विद्वान् होते हैं वे ही समझ सकते हैं। श्रद्धालु पुरुषके लिये ब्रह्म बहुत ही नजदीक और अश्रद्धालुओंके लिये दूर है। स्थानकी दृष्टिसे भी दूर-से-दूर और नजदीक-से-नजदीक है। शरीरके भीतर इन्द्रियाँ हैं। उनसे भीतर मन, मनके भीतर बुद्धि और उसके भीतर आत्मा है, यह नजदीक-से-नजदीक हुआ।

देश, काल, वस्तुसे विचार करके देखा जाता है तो परमात्मा नजदीक-से-नजदीक और दूर-से-दूर हैं। इसका सार है कि जो कुछ है वह परमात्मा ही है, परमात्माके सिवाय कोई चीज है ही नहीं। बतलानेकी पद्धति अलग-अलग है। वास्तवमें जो बात गीता १३। १५ में है वही १३। ३०में है और भी जगह-जगह भगवान् कहते हैं—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥ (गीता ४। २४)

जिस यज्ञमें अर्पण, स्त्रुवा आदि भी ब्रह्म है और हवन किये जानेयोग्य द्रव्य भी ब्रह्म है तथा ब्रह्मरूप कर्ताके द्वारा ब्रह्मरूप अग्निमें आहुति देनारूप क्रिया भी ब्रह्म है—उस ब्रह्मकर्ममें स्थित रहनेवाले योगीद्वारा प्राप्त किये जानेयोग्य फल भी ब्रह्म ही है।

इसका भाव यही है, जो कुछ है ब्रह्म ही है। इस प्रकारके ज्ञानसे ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है। सबका बाध करके जो बच जाता है वह परमात्मा है, यह निषेध मुखसे कहा जाता है और सब वासुदेव ही हैं, यह विधि मुखसे कहा जाता है। जिसको जो सुगम पड़े वही साधन उसके लिये बढ़िया है। एक आदमीके संग्रहणीकी बीमारी थी। निर्णय हो गया कि संग्रहणीकी बीमारी है। दवा यह तय हुई कि या तो छाछ-ही-छाछ पीओ या मट्ठा-ही-मट्ठा पीओ। दोनोंमें कौन-सा ठीक है। वैद्यने कहा, जो अनुकूल पड़े वह ठीक है। आपने जो पूछा था वह थोड़ी बात बतायी गयी है। प्रकरण पूरा नहीं हुआ। उस दिन पूरा हुआ समझना चाहिये जब उसकी प्राप्ति हो जाय। जबतक उस चीजकी प्राप्ति नहीं हो तबतक जीवनपर्यन्त इसकी चर्चा ही करते रहें। आप कहें कि कितने समयमें परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। शास्त्र यह कहते हैं कि श्रोता-वक्ता दोनों पात्र हों तो मिनटोंका काम है। श्रोता यदि पात्र नहीं है तो उसके पात्र बननेमें जितना समय लगे। जितना उसमें दोष होगा, उसीके अनुसार समय लगेगा। दूधका खोआ निकालना है, जितना पानी होगा उतनी ही देर लगेगी। हमलोगोंमें मलविक्षेप-आवरण है, यह पानी है। उसे जलानेमें जितनी देर लगे। यदि वक्तामें कमी है तब तो प्राप्ति नहीं होगी। उस वक्तामें तो योग्यता नहीं है, किन्तु यदि श्रोताके श्रद्धा अधिक हो तो उस श्रद्धाके कारण कार्य हो

सकता है। यदि वक्ता विद्वान् है तो उससे उतना ही लाभ मिल सकता है जितना टेपरिकार्ड और पुस्तकोंसे। पुस्तकोंकी अपेक्षा कुछ अधिक लाभ हो सकता है। यदि भगवत्प्राप्त महापुरुष मिल जायँ और यदि श्रद्धा हो तो विलम्बका काम ही नहीं है। अन्तःकरण शुद्ध नहीं होनेसे श्रद्धा नहीं होती। अन्तःकरणको शुद्ध बनाना चाहिये। सत्यकामका शिष्य ४८ वर्षतक गुरुके यहाँ पढ़ता रहा, किन्तु गुरुने ब्रह्मके स्वरूपका उपदेश नहीं दिया। ४८ वर्षतक ब्रह्मचर्यका पालन किया। गुरु सत्यकाम ज्ञानी थे और अग्निहोत्री थे। शिष्य अग्निहोत्रके लिये लकड़ी लाया। उसके बाल लकड़ीमें अटक गये, उसने देखा कि उसके बाल सफेद हो गये हैं। वृद्धावस्था आ गयी है। वह उदास हो गया। उदास देखकर अग्नियोंने उसे उपदेश दिया। तत्पश्चात् गुरुजीने भी उसे उपदेश दिया। इसका अभिप्राय यह है कि जो समय लगता है, पात्र बननेमें लगता है और देरी नहीं है। भ्रम मिटना और यथार्थ ज्ञान एक ही कालमें होता है।

नारायण! नारायण!! नारायण!!!

❑❑

सिद्ध महापुरुषकी स्थिति

सिद्धकी कैसी स्थिति रहनी चाहिये, यह बात गीता बता रही है—

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥ (३।१८)

उस महापुरुषका इस विश्वमें न तो कर्म करनेसे कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मोंके न करनेसे ही कोई प्रयोजन रहता है तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें भी इसका किंचिन्मात्र भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं रहता।

जिस पुरुषकी संसारमें तृप्ति, सन्तोष और रति तीन चीजें न हों उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं है। इसका प्रयोजन यह लेना चाहिये कि एक परमात्माके सिवाय उसका किसीसे कुछ सम्बन्ध नहीं है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ (गीता २।५७)

जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ या अशुभ वस्तुको प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है।

इस प्रकार संसारमें स्नेह और संसारके पदार्थोंसे तृप्ति नहीं मानता, उसकी तृप्ति सन्तोष तो दूसरी प्रकारसे है। वहाँ रुपयोंसे आनन्द नहीं है।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥ (गीता ६।२२)

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

प्रवचन-तिथि—वैशाख शुक्ल १, संवत् २००२, प्रातःकाल (उत्तरार्ध), वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

जिसको पाकर और पानेके लायक दूसरी वस्तु समझता ही नहीं तथा जिस परमात्मामें स्थित होनेके बाद भारी दुःख भी आये तो विचलित नहीं होता। कोई भी क्रिया हो उसे न करनेका प्रयोजन है और न न करनेका प्रयोजन है।

परमात्माकी प्राप्ति हो जानेके बाद वह पूर्णकाम हो जाता है। वहाँ कंचन-कामिनीका त्याग तो रहता ही है। मान-बड़ाई, प्रतिष्ठाकी इच्छा नहीं रहती, लोग मेरेमें श्रद्धा करें, यह भाव भी नहीं रहता। लोग मेरी बात मानें, यह भाव भी नहीं रहता। यह जो कुछ है अहंकारका द्योतक है। कीर्ति, मान, प्रतिष्ठा सबसे वह पार हो जाता है। यह सब कुछ वह नहीं चाहता। व्यवहारमें कहीं ये आ जाते हैं, किन्तु भीतरमें वह नहीं चाहता। व्यवहारमें वह ऐसा ही आचरण करता है जिससे आत्माका कल्याण हो। जो मुक्तस्वरूप हैं उनकी ऐसी ही क्रिया होती है जिसका अनुकरण करके दूसरेका कल्याण हो; किन्तु उसमें यह मान्यता नहीं रहती कि मैं जो कुछ करता हूँ उसका अनुगमन करनेसे दूसरोंका कल्याण हो जायगा। गीता कहती है कि वह जो कुछ आचरण करता है, दूसरे लोग उसका अनुकरण करते हैं। वह करता नहीं किन्तु उसके द्वारा होते हैं। भगवान् कहते हैं—

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ (गीता ३। २५)

हे भारत! कर्ममें आसक्त हुए अज्ञानीजन जिस प्रकार कर्म करते हैं, आसक्तिरहित विद्वान् भी लोकसंग्रह करना चाहता हुआ उसी प्रकार कर्म करे।

भगवान्‌ने प्रेरणा की है आज्ञा नहीं दी है। ऐसी इच्छा भगवान्‌में होती है, ज्ञानीमें भी हो सकती है, वह इच्छा आरोपित है, वास्तवमें इच्छा नहीं है। इच्छा होगी तो उसके द्वारा कार्य होगा, कार्य होगा तो राग-द्वेष होंगे। लोकसंग्रहका जो तात्पर्य है वास्तवमें उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह वर्णन पुस्तकोंमें भी नहीं दीखा। मेरी

समझमें जो आया है उसे समझानेके लिये कई उदाहरण गढ़े; किन्तु अभीतक वाणीके द्वारा जो बताया गया है, वह पूरा नहीं बताया जा सका है। पुस्तकोंमें आया है कि असत् मार्गसे हटाना, सत् मार्गमें लगाना, इस उद्देश्यको लेकर जो क्रिया की जाती है उसका नाम लोकसंग्रह है, किन्तु इससे सन्तोष नहीं होता।

विचार किया जाय तो यह भाव नहीं हो सकता कि मैं तो सत्-मार्गमें हूँ, ये असत्-मार्गमें हैं, इन्हें सत्-मार्गमें लगाओ। ज्ञानीमें यह भाव नहीं घट सकता; क्योंकि उस प्रकार वह स्वयं तो ज्ञानी बना दूसरोंको अज्ञानी समझा। ज्ञानीके मनमें यह बात नहीं आ सकती कि मैं लोकसंग्रहके लिये करता हूँ। जबतक मैं है, तबतक ज्ञान कहाँ है। ऐसे लोकसंग्रहका नतीजा लोग देखेंगे तब तो कार्य होगा, लोग नहीं देखेंगे तो कार्य नहीं होगा। बड़ी गंभीर बात है। आपलोग देखेंगे तब तो मैं ध्यानस्थ हो जाऊँगा जब नहीं देखेंगे तब नहीं। यह तो दम्भ है इसका नाम लोकसंग्रह नहीं। लोकसंग्रहमें उसकी क्रिया सदा एक ही रूपमें होगी, दिखानेके लिये नहीं, बनावटी नहीं। स्वाभाविक होकर भी जिज्ञासुके जैसी स्वाभाविकता होती है, ऐसी नहीं होगी; क्योंकि उसमें कोई धर्मी नहीं है। धर्मी हैं, आचार्य हैं वे स्वाभाविक कोई बात शिष्योंको बता रहे हैं। कोई बात शिष्य काममें लाता है तो प्रसन्न होते हैं, काममें नहीं लाते तो प्रसन्न नहीं होते। इस प्रकारका भाव वहाँ नहीं होता। काममें लानेवालोंका और नहीं लानेवालोंका उनके अन्त:करणमें कुछ भी विकार नहीं होता। छाया तो पड़ती है; किन्तु विकार नहीं होता। आईना है उसमें मनुष्य आये उसका प्रतिबिम्ब आया। मैलेकी टोकरी आयी उसका भी प्रतिबिम्ब आया; किन्तु दर्पण वैसा ही है, किन्तु कैमरेके काँचने सबकी छाया पकड़ ली। जो परमात्माकी प्राप्ति करनेवाला पुरुष नहीं है उसमें सब प्रतिबिम्ब पकड़े जाते हैं, राग-द्वेष होते हैं। व्याख्यान हुआ, बड़ा बढ़िया व्याख्यान हुआ, यह शब्द कानमें पड़े खुश हो गया।

एक भाईने कहा व्याख्यान तो बड़ा बढ़िया हुआ; किन्तु इस

विषयका व्याख्यान अमुकसे जैसा सुना था वैसा यह नहीं है। सुनकर चेहरा उदास हो गया, उससे प्रसन्नता और इससे मलिनता हुई। इन सभी बातोंका उन महात्मा पुरुषमें नाम-निशान नहीं रहता। वहाँ तो एक आदमीने आकर गालियाँ दीं, किसीने प्रशंसा की। बीस तरहके आदमियोंने बीस तरहकी बात कही। इन सबका उनपर कुछ भी असर नहीं होता।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥

(गीता १४। २४-२५)

जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित, दुःख-सुखको समान समझनेवाला, मिट्टी, पत्थर और स्वर्णमें समान भाववाला, ज्ञानी, प्रिय तथा अप्रियको एक-सा माननेवाला और निन्दा-स्तुतिमें भी समान भाववाला है। जो मान और अपमानमें सम है, मित्र और वैरीके पक्षमें भी सम है एवं सम्पूर्ण आरम्भोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित है, वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है।

दर्पणकी आप प्रशंसा करें, निन्दा करें, धूल डालें किन्तु उसपर विकार नहीं होगा। केवल प्रतिबिम्ब पड़ता है, इसी प्रकार उसका अन्तःकरण निर्विकार रहता है। सारी चीजोंका प्रतिबिम्ब पड़ता है; किन्तु लिपायमान नहीं होता, प्रसन्नता, राग-द्वेष नहीं होते, विक्षेप नहीं होता। साधनावस्थामें अपमानका आदर और मानका तिरस्कार रह सकता है, किन्तु प्राप्ति हो जानेके बाद वहाँ समता रहती है। अच्छे महात्मा पुरुषोंके द्वारा भी इस प्रकारका व्यवहार होता है कि अपमानको आदर देना और मानको कूकरकी विष्टाके समान समझना; किन्तु भीतरमें उनमें समता होती है। जो महात्मा यह चाहे कि यह मेरे ऊपर श्रद्धा करे, श्रद्धा करनेसे इसका साधन होगा, साधन तेज होनेसे इसका कल्याण

होगा, जिनकी यह मान्यता है पहले उनके कल्याणकी आवश्यकता है। जो मनुष्य अपने नाम या रूपको जीते हुए पुजाना चाहता है या मरनेके बाद पुजाना चाहता है वह अन्धकारमें है। वह महात्मा नहीं महातमा है। आप कहें कि इस प्रकार विचार करके देखेंगे तो महात्माका मिलना ही मुश्किल है। बात तो यह खरी है। आप कहें कि अच्छे पुरुषोंकी चेष्टामें भी यह बात देखी जाती है कि लोग हमारेमें श्रद्धा करें, हमारी बात काममें लायें। उन्हें तो कुछ प्रयोजन रहता नहीं। दम्भियोंमें भी तो यह बात देखनेमें आती है। देखना चाहिये कि वह ऐसा क्यों कहते हैं। श्रद्धा हटानेके लिये भी कह सकते हैं। साधक भी श्रद्धा हटानेके लिये ऐसा कर सकता है। उनमें श्रद्धा होगी तो झंझट बढ़ेगा। सिद्ध किसलिये करता है, कई कारण हो सकते हैं, वही जानें। दो साधक थे। वे थे तो साधक, लोग उन्हें सिद्ध मानने लगे। राजा साहबको पता लगनेपर उन्होंने आनेका प्रोग्राम बनाया। साधकोंने देखा कि राजा साहबके आनेसे काफी प्रचार हो जायगा तथा काफी लोग आने लगेंगे। इससे झंझट ही बढ़ेगा; अतः वे लोग राजाके आनेपर रोटीके लिये झगड़ने लगे। राजाने देखा कि ये क्या महात्मा हैं। रोटीके लिये लड़ रहे हैं। यह देखकर राजा वापस चला गया। पर यह तो सिद्धान्तकी बात बतायी जाती है, जिसका यह भाव हो कि लोगोंकी मेरेमें श्रद्धा हो, जिससे इनका कल्याण हो, इस प्रकारकी मान्यता जिसके अन्तःकरणमें होती है वहाँ धर्मी कायम है तथा अहंकार और अज्ञान भी है। मान-बड़ाई आदि ये जिनमें नहीं आते वे वन्दनीय हैं। ऐसा पुरुष लाखों, करोड़ोंमें कोई एक होता है।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥ (गीता ७। ३)

हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है

और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे जानता है।

जो परमात्माको प्राप्त हो चुका है उसमें ये विचार नहीं आते। हर एक साधकको अपने कल्याणके लिये इनसे बचनेकी कोशिश करनी चाहिये, ताकि मान-बड़ाई आदि न आयें। मानको ठुकरानेके बाद कीर्ति और प्रशंसाकी वर्षा होती है, उन्हें भी ठुकरा देना चाहिये। विरोध करनेपर यदि क्रोध आ जाय तो कोई बात नहीं। उस क्रोधसे आपका पतन नहीं होता। वह क्रोध पीछे दूर कर लिया जायगा। मनमें यह निश्चय होना चाहिये कि मान-बड़ाई रसातलमें ले जानेवाली हैं। कोई आदमी ऊपर उठ रहा है, उसे यह दबानेवाली है। इनसे खूब बचाव रखना चाहिये। साधक और सिद्ध दोनोंको ही खूब ध्यान रखना चाहिये। सिद्धके लिये भगवान् बताते हैं—

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥ (गीता ३। १८)

उस महापुरुषका इस विश्वमें न तो कर्म करनेसे कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मोंके न करनेसे ही कोई प्रयोजन रहता है तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें भी इसका किंचिन्मात्र भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं रहता। उसके द्वारा न कर्मोंका ग्रहण होता है न त्याग होता है। व्यवहार राग-द्वेषसे शून्य होता है। वह किसी कर्मका कर्ता नहीं है।

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः॥ (गीता १८। १०)

जो मनुष्य अकुशल कर्मसे तो द्वेष नहीं करता और कुशल कर्ममें आसक्त नहीं होता—वह शुद्ध सत्त्वगुणसे युक्त पुरुष संशयरहित, बुद्धिमान् और सच्चा त्यागी है। पाप नहीं करता, किन्तु पापसे द्वेष नहीं है। शुभ क्रिया करता है, किन्तु रागपूर्वक नहीं। वह असली त्यागी है, ज्ञानी है, उसके सब संशयोंका नाश हो गया है।

❑❑

महात्मा बननेका उपाय

महापुरुष बननेके लिये सब तैयार हैं; साधन करनेके लिये कोई तैयार नहीं है। कोई वरदान दे दें या आशीर्वाद दे दें तो तैयार हैं। महात्मा बिना साधनके नहीं बनता। सारी बातें भगवान्‌के शरण होनेसे हो जाती हैं। इसलिये सबको भगवान्‌की शरण होना चाहिये। महापुरुषोंके लक्षण अपनेमें घटाने चाहिये। हमलोग महात्माओंके लक्षण दूसरोंमें देखना चाहते हैं, अपनेमें नहीं। दूसरोंके अवगुण हम सहन नहीं कर सकते। अपनेमें चाहे हजारों अवगुण हों, हम दूसरोंको महात्माकी कसौटीपर कसना चाहते हैं। अपना कल्याण तो अपनेको कसनेसे ही होगा, दूसरोंको कसनेसे नहीं। महात्मा बननेके लिये किस प्रकार अपना जीवन बिताना चाहिये, यह बात साररूपसे बतायी जाती है। ध्यान देना चाहिये, बहुत कीमती बात है। काममें लायी जाय तो बहुत जल्दी ही परमात्मा मिल सकते हैं। जो काममें लाना चाहे वही काममें ला सकता है। इसपर भी यदि काममें न लायी जाय तो उसको घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। तुलसीदासजीने कहा है—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

झूठा दोष लगानेसे कोई लाभ नहीं है। पहले थोड़ा पश्चात्ताप कर लें तो फिर बादमें पश्चात्ताप नहीं करना पड़ेगा। पहले पश्चात्ताप यानी साधन बिना थोड़ा-सा समय बीत जाय तो इस प्रकार रोना चाहिये, जैसे लड़का मर जाय उस समय रोते हैं। अपना एक क्षण समय भी व्यर्थ न जाने दें। रात्रिको सोनेके समय नेत्र बंद करके भगवान्‌के गुणोंको याद करके सोयें। गीताजी, विष्णुसहस्रनाम, गजेन्द्रमोक्ष, अनुस्मृति, भीष्मस्तवराज—ये पाँच रत्न हैं। जिसका इनमें अभ्यास हो उनको याद करता हुआ सोये

प्रवचन-तिथि—वैशाख शुक्ल १, संवत् २००२, दोपहर, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

या भगवान्‌के नामका जप और भगवान्‌के जिस स्वरूपमें श्रद्धा और रुचि हो उस स्वरूपका ध्यान करते हुए सोये। रातको जागते समय खयाल करे कि मन किसका चिन्तन कर रहा है। मनके स्मरणके अनुसार ही भावी जन्म होता है।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ (गीता ८।५)

जो पुरुष अन्तकालमें भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ज्ञानी महात्माका अन्तःकरण दर्पणकी तरह होता है उसमें संकल्प नहीं पकड़ा जाता। ऐसा अन्तःकरण बना लेना चाहिये।

भगवान्‌के नामका, स्वरूपका या धामका ही चिन्तन करे, इसके सिवाय किसीकी गुंजाइश ही न दे। मनुष्यका मन कुछ-न-कुछ करता ही रहता है। यह लाखों जन्मोंकी आदत है, क्षणमात्र भी कुछ किये बिना नहीं रहता। कुछ-न-कुछ तो करना ही है फिर मनको भगवद्विषयक काम सँभला दें अन्यथा बड़ी मुश्किल होगी। जैसा अभ्यास किया जाता है वैसी ही गति होगी। कर्मोंके अनुसार ही संस्कार पड़ते हैं। अन्तकालकी स्मृतिके अनुसार ही भावी जन्म होगा। अन्तकालका पता नहीं कब आयेगा, इसलिये हमारी स्थितिका सुधार होना चाहिये। हर समय भगवत्-विषयको लेकर ही हमारी स्थिति होनी चाहिये। शरीरका निर्वाह तो जैसे आजतक हुआ, गर्भमें हुआ, बालकरूपमें हुआ, वैसे आगे भी होगा। उस समय यदि माँने रक्षा की तो अब भगवान् करेंगे। भगवान् कहते हैं—‘**योगक्षेमं वहाम्यहम्।**’ इसके दो अर्थ होते हैं—एक तो सब खाने-पीनेकी व्यवस्था भगवान् स्वयं करेंगे। दूसरा जिस साधनकी प्राप्ति नहीं हुई है उसकी वे प्राप्ति करा देंगे तथा प्राप्त साधनकी रक्षा करेंगे। आगे बढ़नेपर निर्योगक्षेम आत्मवान्‌की स्थिति हो जाती है।

बालक जबतक जीता है, चाहे बड़ा हो जाय, माँ रक्षा करती ही है। ईश्वररूपी माँ मरनेवाली नहीं है, इसलिये हमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। यावन्मात्रका प्रारब्ध बना हुआ है, वह प्रारब्ध सँभालेगा। खयाल करो वृक्ष आदि कितने प्राणी हैं वे क्या चेष्टा करते हैं; किन्तु जी रहे हैं। समयपर तो सभी मरते हैं। क्या तुम नहीं मरोगे? लाख जतन करो तब भी मरना ही पड़ेगा। शरीर तो परिवर्तनशील है। फिर तुम कैसे कायम रहोगे। जीना और मरना अपनी इच्छापर निर्भर नहीं करता, प्रारब्धपर निर्भर करता है। ऐसी परिस्थितिमें अपने शरीरके लिये समयको बर्बाद करना बड़ी भारी मूर्खता है, इसलिये साधनके लिये तत्पर हो जाना चाहिये।

रातको गीता और विष्णुसहस्रनामका पाठ करते-करते सोना चाहिये। स्वप्नका संसार कहाँसे पैदा हुआ। हम व्याख्यान सुनते हैं, सुनते समय भी मन अन्य कल्पना करता रहता है। उसीका मनन चलता रहता है और आँख लग जाती है। वही स्वप्न बनता है, यह अपने हाथकी बात है। सोनेके पूर्व सावधानीके साथ बहुत-सा सामान मनके सामने रख देवें या भगवान्‌से वार्तालाप करें, जैसे 'ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप' नामक पुस्तकमें है। भगवान् यहाँ विराज रहे हैं। यह मानकर उनसे वार्तालाप शुरू कर दें। ऐसे करते-करते सो जायँ तो स्वप्नमें भी वह बातचीत चलती रहेगी। मैं व्याख्यान देता हूँ। रातको सोता हूँ तो स्वप्नमें भी व्याख्यान ही देता हूँ। जाग्रत्‌में जो मनन होता है वही स्वप्नमें याद आता है। स्वप्नको सुधारनेके लिये यह बड़े महत्त्वकी बात है। स्वप्नका सुधार आप कर लें तो स्वप्नमें बड़े जोरका साधन चलेगा। मुझे तो स्वप्नमें कई बार भगवान्‌के दर्शन हुए, समाधि हुई। पूर्वमें खराब स्वप्न आया करते थे, तब विष्णुसहस्रनामका पाठ करता था। नींद खुली जहाँतक याद रहा उसके आगे फिर शुरू कर देता। उससे बड़ा लाभ हुआ। आप करके देख लें,

आपसे न तो पैसा लिया जाता है, न धोखा दिया जाता है। इस प्रकार करनेसे आपको शान्ति मिलेगी। यह बड़ी कीमती बात है। यह एक सुधार तो करना चाहिये।

अब दूसरी बात बतायी जाती है। जब आप एकान्तमें प्रात:काल और सायंकाल नित्यकर्म करते हैं, ***'हरे राम'*** या **'नमः शिवाय'**का जप करते हैं। सब भाई अपने इष्टके अनुसार अर्थसहित या मूलका जो पाठ करते हैं उसके सुधारकी परम आवश्यकता है। उसके करनेमें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये। मन चाहे जितना समझाये, सुने ही नहीं। मन समझाये कि सत्संग होनेवाली है तो समझा दो थोड़ी देर बाद कर लेंगे, भगवान् आकर खड़े हों तो समझा दो थोड़ी देर बाद मिलेंगे। भगवान् किस बलपर आये हैं? तुम्हारे भजन-साधनके बलपर आये हैं, फिर उसे क्यों छोड़ते हो। भगवान्से कहो पीछे मिलेंगे। भगवान् स्वतः ही आकर मिलेंगे। श्रवण, पुण्डरीक, मूक चाण्डाल—ये माता-पिताके प्रधान भक्त हुए हैं। भगवान् तो स्वतः ही आयेंगे। उनकी गर्ज करनेकी आवश्यकता नहीं है। जिस समय हम साधन करें, मन याद दिलाये कि यह करना है, यह करना है, यह मनका पाजीपन है। उसकी बात मत सुनो, मनके अनुसार मत चलो।

मन लोभी मन लालची मन चंचल मन चोर।
मन के मते न चालिये पलक पलक मन और॥

मन कोई बात सुझाये तो सुनो ही मत। आपके सामने चाहे सोनेका महल लाकर रखे, तिरस्कार कर दो। अध्यात्मविषयक लाभ दिखाये उसका भी त्याग कर दो। अपने समयको कीमती बिताओ। इस तरह बार-बार मनका तिरस्कार होनेसे वह समझ लेगा कि तुम्हारी दाल यहाँ नहीं गलेगी। इस प्रकार अपने समयका सुधार करें, भगवान्के नामका जप करें। भगवान्के

नामका जप करते समय मुग्ध होता जाय, गीता-पाठ करें तो देखें भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको गीता सुना रहे हैं। सोचें कैसा भाव भरा हुआ है, इस प्रकार पाठ करें। पाठ करता जाय और मुग्ध होता जाय। इसी प्रकार भगवान्का ध्यान करें। चरणोंकी तरफ वृत्ति गयी तो मुग्ध हो जाय, प्रभु प्रेमसे देख रहे हैं, आकर्षण कर रहे हैं। दाँतोंकी पंक्ति कैसी सुन्दर है। गुणोंकी तरफ खयाल करके मुग्ध हो जाय। इस प्रकार गुण और प्रभावसहित भगवान्के स्वरूपका ध्यान करें। ऐसे ही निराकारका ध्यान करें तो सोचें कैसी शान्तिकी बाढ़ आ रही है, चेतनता एवं आनन्दकी सीमा नहीं है, सब आनन्द है, खूब गहरा घन आनन्द है, अनन्त आनन्द है। इस प्रकार जितने विशेषण मिलें आस्वादन लेता जाय, इस प्रकार मनन चलाये। पूजा करें तो देखें सामने भगवान् विराजमान हो रहे हैं, मनसे ही पूजा करें। जो कुछ आप नित्य प्रति करते हों तन्मय होकर करें फिर देखें कितना सुधार होता है। जब सत्संग करें तब सत्संगकी प्रधानता रखें। नाम-जप गौण रूपसे करते रहें, माला फिरे तो अच्छी बात, नहीं फिरे तो कोई बात नहीं। सत्संगमें जो बात सुनी है बस समझ लो धारण हो गयी। दूसरेकी स्त्री माँ-बहनके समान है, डूबकर मरना अच्छा; किन्तु पाप-कर्म नहीं करना है। झूठ, चोरी, व्यभिचारकी बात सुनी, प्रतिज्ञा कर ली कि आजसे होगी ही नहीं। धारण करनेकी बात सुनते ही धारण हो गयी। सुन-सुनकर मुग्ध हो जाय, जैसे बीन सुनकर मृग मुग्ध हो जाता है। संसारसे बेपरवाह हो जायँ, आनन्दमें मस्त रहें, जैसे भोगी आदमी भोगोंका आस्वादन लिया करते हैं, कोई चीज खाते हैं, कैसा स्वाद है, इसी प्रकार भगवद्विषयमें आस्वादन लेना चाहिये। यह भगवद्विषयक आस्वादन गुणोंसे अतीत है। और कुछ नहीं तो भगवान्को लेकर बैठ जायँ कि आओ बात करें। निकम्मे आदमी बैठ जायँ तो बातें ही करते हैं।

भगवान्‌को छोड़कर फालतू आदमियोंसे बात करना मूर्खता है और भगवान् बात करनेको तैयार हैं। भगवान्‌को बुलाया आ गये। अब बात करें। आजकल आपके वैकुण्ठमें क्या हो रहा है, हमारे मित्रोंकी बात चलती है क्या। बातका क्या ठिकाना है। कभी भगवान्‌की तरफसे कभी अपनी तरफसे बात चले।

वही वृत्तियाँ रात-दिन रहें। खाते-पीते, उठते-बैठते भगवान् साथ रहें। भगवान् पीछे रह जायँ तो बुलाये क्यों थक गये क्या? अब भगवान् आ गये, आगे बढ़ें, साथमें चलें, इस प्रकार भगवान्‌को साथ लेकर चलें। पूछे तुम हँसे क्यों नहीं, क्या बात है। इस प्रकार मन-ही-मन बात करें, उच्चारण करके नहीं, अन्यथा लोग समझेंगे कि पागल है। भोजन करें तो एक थाली अपनी तथा एक भगवान्‌की परोस लें। अपने भोजन पहले कर लिया, भगवान् धीरे-धीरे करते हैं। कह दो धीरे-धीरे करो, कोई जल्दी नहीं है। ठीक इस तरह मानो सोलह आना भगवान् अपने साथ चलते हैं, बातें होती हैं। कभी साथ छोड़े ही नहीं। इस प्रकार चलते-उठते, खाते-पीते उसे न छोड़ें, आप कहें तब तो व्यवहार नहीं होगा। आजतक व्यवहार चलाकर क्या लाभ उठाया। सगुण उपासकोंके लिये यह बात है, निर्गुण उपासकोंकी बात उनके ढंगकी है। अन्य लोगोंके साथ व्यवहार कैसे करें? नाटक होता है उसमें जो स्वांग लेकर आये उसे असलीकी तरह पेश करनेवालोंको इनाम मिलता है। अपने नट भगवान् हैं। अपने अच्छा स्वांग उतारें, इनाम दे तो यही लें कि सदा आपके साथ रहें। नट हर समय देखता रहे कि मेरा पार्ट ठीक चल रहा है। जिस समय जो व्यवहार करना चाहिये वैसा ही व्यवहार करें। इस प्रकार नाटक करता रहे। भगवान्‌की नाट्यशाला है, सब खेल रहे हैं। यह ध्यान रखें कि जितने खेलनेवाले हैं सबसे बढ़िया खेल हमारा होना चाहिये। ईर्ष्या करें कि अमुक आदमीने

चार घण्टा भजन किया हम छः घण्टा करें। उसमें भी ज्यादा भाव करें। हर एक आदमीसे पूछता रहे कि साधन कैसा चलता है, आपके क्या-क्या बाधा आती है। अपने तो यही काम है दूसरा काम ही नहीं है। दूसरेसे बतलाना, पूछना '**बोधयन्तः परस्परम्**' है। बहुत उच्चकोटिका भाव भरे। सबसे उच्चकोटिका भाव भगवद्बुद्धि है। भीतर भगवद्बुद्धि होनी चाहिये, ऊपरसे नीतिका व्यवहार होना चाहिये। नाटकमें सिपाही बना है, वह सिपाहीका काम करता है, झाड़ू देनेवाला झाड़ू लगाता है। अपना स्वांग नहीं लजायें। भीतरमें समझें कि सब भगवान्का स्वरूप है। एक भीतरी वृत्ति है, एक बाहरी वृत्ति है। भीतरी वृत्तिमें तो नारायण समझें, ऊपरी व्यवहार कानूनके अनुसार करें। फिर देखो कैसा मजा है। रास्तेमें चले, गौ आ गयी, प्रभो! यहाँ आप गौके रूपमें विराजमान हैं। मन-ही-मन प्रणाम करें। आगे कुत्ता मिले, समझें भगवान् इस रूपमें आये हैं। इस प्रकार भगवद्भाव रहे तो प्रसन्नता रहे, आनन्द रहे, चल रहे हैं कुत्ता आ गया तो उसे छुए नहीं। हाथमें लाठी भी रखें ताकि काट न ले। यह तो नीतिका व्यवहार है।

कहीं-कहीं ज्यादा भावुकता आ जाती है तो बाहरमें भी वह भाव आ जाता है; जैसे नामदेवजी कुत्तेके पीछे घी लेकर भागे। अग्नि लगी तो कहा—सेवकके रहते भूखे क्यों रहते हैं। भोग लगाइये, सब खत्म हो गया। यह भाव है, यदि नहीं सँभाल सके तो प्रकट हो गया; किन्तु जान-बूझकर प्रकट न करें, अन्यथा दम्भ हो जाता है। सावधानीपूर्वक नीतिके व्यवहारको कायम रखें। इन बातोंको थोड़े दिन काममें लेकर देखना चाहिये। आजसे ही आरम्भ करो फिर लाभ हो तो आगे बढ़ाना।

❑❑

भगवान्‌का रसास्वाद

भगवान्‌के ध्यानके पूर्व भगवान्‌का आवाहन करना चाहिये। भगवान्‌को नेत्र बन्द करके बुलाना चाहिये। अपने सम्मुख भगवान्‌को देखना चाहिये। जब भगवान् आते हैं तब बड़ी भारी शान्ति हो जाती है, मानो शान्तिकी बाढ़ आ गयी हो। जहाँ शान्ति है वहाँ सुख है। यहाँ तो स्वाभाविक ही शान्ति है। यहाँ स्वाभाविक ही भगवान्‌में प्रेम होता है। यहाँका दृश्य बड़ा ही अलौकिक है। यहाँका दृश्य याद करनेपर आत्मा बड़ी पवित्र हो जाती है। भगवती गंगाकी कृपासे बड़ी सहायता मिलती है। इसकी ध्वनिसे कान पवित्र हो जाते हैं, दर्शनसे पापोंका नाश हो जाता है। ठंडी हवा जो इससे स्पर्श होकर आती है उससे सारा शरीर पवित्र हो जाता है। यहाँकी रेणुका बड़ी पवित्र होती है। इसका आसन इतना मुलायम है कि मखमल भी कोई चीज नहीं। मृत्युके समय इसका तिलक करनेसे आत्मा पवित्र हो जाती है। रुईकी गद्दी गलीचेका आसन आपको मिलेगा; किन्तु ऐसा आसन मिलनेका नहीं है। यहाँ सब प्रकारसे मदद है। गंगाका पान, स्नान जिससे बाहर-भीतरके पाप नष्ट हो जाते हैं। गंगाका दर्शन, स्पर्श, पान सब मंगलकारक हैं। यह वटवृक्ष और भगवान्‌की चर्चा यह सब भगवान्‌की कृपासे ही मिलता है। सारी पृथ्वीमें यह भारतवर्ष पवित्र है। उसमें भी यह उत्तराखण्डकी भूमि गंगाका किनारा परम पवित्र है। यहाँ महात्माओंने तपस्या की है उनके परमाणु यहाँ विराजमान हैं। दर्शन होता है तो गंगाका या पहाड़ोंका, यहाँ जनसमूह नहीं है, बस्ती नहीं है। ऐसा एकान्त पवित्र स्थान, पहाड़की कन्दरा, ईश्वरकी कृपासे ही ऐसा साज जुटता है। इसपर भी हमारी आत्माका कल्याण नहीं हो तो बड़ी लज्जाकी बात है। तुलसीदासजीने कहा है—

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

प्रवचन-तिथि—वैशाख शुक्ल २, संवत् २००२, प्रातःकाल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करते-करते मनुष्य-शरीर मिला, ऐसे मौकेमें बड़ा जल्दी कल्याण हो सकता है, अन्यथा फिर चौरासी लाख योनियोंमें भटकना पड़ेगा। ऐसे दुःखमय संसारमें अपने जीवनको दुःखमय बनाना कितनी मूर्खता है। परमात्माके ध्यानमें ऐसे मस्त हो जाय कि अपने शरीरका भी ज्ञान न रहे। जैसे सुतीक्ष्णजीको मार्गका ज्ञान नहीं रहा, खुद भगवान् वहाँ पहुँचे, उन्हें दर्शन दिया। भगवान्‌का आवाहन करना चाहिये जैसे भरतजीने किया। उनका कैसा ऊँचा भाव है। जब भगवान् राम नहीं पहुँचे, उनकी दशा बेदशा हो गयी। भरतजी महाराज जब चित्रकूटसे वापस आये, तब उन्होंने चरणपादुका माँगी। भरतजीने चरणपादुका मस्तकपर धारण की और कहा कि चौदह वर्षके बाद पन्द्रहवें वर्षके पहले दिन यदि आप अवधमें नहीं पहुँचेंगे तो मैं अग्निमें प्राण त्याग दूँगा। चौदह वर्ष जब व्यतीत हो गये, रावण मारा गया तब विभीषणने कहा, महाराज कुछ दिन यहाँ निवास कीजिये। भगवान् रामने कहा, यदि मैं ठीक समयपर नहीं पहुँचूँगा तो मेरा प्राण प्यारा भाई नहीं मिलेगा। इसलिये तुम जल्दी ही मुझे वहाँ पहुँचाओ। महाराजकी आज्ञासे पुष्पक-विमान मँगवाया गया। सब उसपर बैठकर अयोध्या पहुँचे। उधर भरतजी व्याकुल हो रहे हैं कि भगवान् क्यों नहीं आये—

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥
कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥
अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥
जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

अहा! हमारे प्राणोंकी अवधिका आधार एक ही दिन बच गया। भगवान् क्यों नहीं आये—प्रभुने मुझे कुटिल जानकर मेरा

त्याग कर दिया। हे लक्ष्मण! तुम धन्य हो जो रामजीके चरणोंमें तुम्हारा इतना प्रेम है। प्रभुने मुझे कपटी समझा इसलिये साथ नहीं ले गये। मेरा प्रेमका व्यवहार दिखाऊ था। भाई लक्ष्मण! तुम धन्य हो, नाथ मेरी करनीकी तरफ देखेंगे तो कैसे काम चलेगा। आप अपने विरदकी तरफ देखिये, आप दीनोंके बन्धु हैं। आप अपने दासोंके दोषोंकी तरफ कभी नहीं देखते, इसीलिये मुझे विश्वास है कि आप जरूर मिलेंगे। प्रभुका स्वभाव बड़ा कोमल है, शकुन भी अच्छे हो रहे हैं तथा यह विश्वास है कि प्रभु जरूर मिलेंगे, यदि किसी कारणसे प्रभु नहीं पहुँचे तो प्राण रहनेके नहीं। भगवान् अवधिके पहले ही आयेंगे इसमें कोई शंका नहीं है, अन्यथा प्राण रहनेके नहीं। भरतजी महाराजकी ऐसी दशा हो गयी, प्राण जानेकी तैयारी हो गयी। उसी समय हनुमान्जी आ पहुँचे जैसे डूबते हुएके लिये नौका आ जाय।

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥

हनुमान्जीने देखा कि नेत्रोंसे जलकी धारा बह रही है। राम-रामकी रटन लगा रहे हैं। हनुमान्जीने कहा कि जिनके नामकी आप रटना लगाते हैं, वे भगवान् लक्ष्मण और सीतासहित आ गये, इतना सुनते ही मानो प्राण आ गये। उनका जीवन नवीन-सा हो गया। भरतजी उस समय तमक कर उठे, कहा—

को तुम्ह तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए॥

हे तात! मुझको प्राण देनेवाले तुम कौन हो? तब हनुमान्जीने कहा—महाराज! मैं तो भगवान् श्रीरामका एक सेवक हूँ—

मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना॥
दीनबंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर॥

तब भरतजीने उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया और कहा—हे तात! मैं तुमसे किसी प्रकार भी उऋण नहीं हो सकता।

एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं॥

नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही॥

तुमने जो संदेश दिया है इसके सदृश दुनियामें कोई पदार्थ नहीं है, मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता। यह तुम्हारा ऋण तो जबतक मैं जीवित रहूँगा, सदा मेरे सिरपर कायम रहेगा।

रघुनाथजीके भाई ऐसे प्रेमपूर्ण हों इसमें क्या आश्चर्य है। उन्होंने भगवान्‌से जाकर सारा संदेश सुनाया और भगवान् आकर सबसे मिले। हमारा भी ऐसा प्रेम हो तो भगवान् आकर दर्शन दे सकते हैं, इतना प्रेम हो तो ध्यानमें तो वे दर्शन दे ही सकते हैं। ध्यानमें आना तो हमारे अधिकारकी बात है। सूरदासजीको भगवान्‌ने अपनी अँगुली पकड़ायी, अँगुली पकड़नेसे उनके शरीरमें बिजली-सी दौड़ गयी तब उन्होंने कलाई पकड़ ली। उन्हें मालूम हुआ कि यह कलाई मनुष्यकी नहीं है, भगवान् ही मालूम होते हैं, इसलिये और जोरसे पकड़ा, तब भगवान्‌ने हाथ छुड़ा लिया। तब सूरदासजीने कहा—'हाथ छुड़ाकर जानेमें आपकी बहादुरी नहीं है; आप हृदयसे चले जायँ, तब आपकी बहादुरी समझूँ'।

बाँह छुड़ाये जात हो निबल जानके मोहि।
हिरदेसे जब जाहुगे पुरुष बदौंगो तोहि॥

शरीरका बल आपमें ज्यादा है इसलिये जा सकते हैं कोई बात नहीं, किन्तु हृदयसे जाना आपके वशकी बात नहीं है। तब भगवान् वापस आ गये, नेत्र दिये और दर्शन दिये। सूरदासजीने भगवान्‌से वरदान माँगा कि निरन्तर आपका ध्यान होता रहे। ये नेत्र मुझे नहीं चाहिये, मैं इस संसारको नहीं देखना चाहता। रुक्मिणीजी प्रेमसे विलाप करती हैं, हे नाथ! आप नहीं आयेंगे तो मैं प्राणोंका त्याग कर दूँगी। इस प्रकार कह रही थीं तभी भगवान् तुरन्त आ पहुँचे। इसी प्रकार गोपियाँ भगवान्‌के विरहमें व्याकुल हो गयीं तो तुरन्त भगवान् वहाँ प्रकट हो गये। हमारेमें इस प्रकारका प्रेम होना चाहिये, फिर भगवान्‌को आना ही पड़ेगा।

□□

तीर्थोंमें करनेयोग्य बातें

जो लोग तीर्थयात्राके लिये आये हैं, उनका कर्तव्य है कि जहाँ जो तीर्थ हो, वहाँ स्नान करना चाहिये। मन्दिरोंमें दर्शन करना चाहिये। साधुओंसे उपदेश लेना चाहिये। चलते-उठते-बैठते भगवान्‌को कभी नहीं भूलना चाहिये। ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। कभी किसीकी हिंसा नहीं करनी चाहिये। दूसरेके धनको धूलके समान समझना चाहिये। यहाँ आकर तप करना चाहिये। धर्मपालनके लिये कष्ट सहना चाहिये। हर समय पवित्र रहना चाहिये। शुद्ध आहार और शुद्ध व्यवहार करना चाहिये। अभिमान छोड़कर जो व्यवहार किया जाता है वही पवित्र व्यवहार है। भारी संकट आनेपर भी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। इस प्रकार अपना जीवन बिताते हुए तीर्थयात्रा करनी चाहिये। तीर्थोंमें तीन चीजें मिलती हैं—धर्म, मोक्ष और काम।

जो केवल आत्माके कल्याणके लिये आते हैं, वे ही सर्वोत्तम हैं। आत्माका कल्याण भगवान्‌की भक्तिसे, परमात्माके ज्ञानसे होता है।

तीर्थोंमें जिस प्रकार यज्ञ, दान, तप करनेसे महान् फल होता है, इसी प्रकार यहाँ पाप करनेसे महान् दुःख होता है।

विधवा स्त्रियोंको शृंगार नहीं करना चाहिये। शृंगारसे दूर रहना चाहिये। संयमसे रहना चाहिये, मोटा खाना, मोटा पहनना चाहिये। अपना समय भजन-ध्यानमें बिताना चाहिये। सर्वसाधारण स्त्रियोंके लिये यह बात है—घरमें कलह न करे, अपने बालकोंको पदार्थ कम दे, दूसरोंके लिये अधिक दे। सबके साथ सम व्यवहार करे या त्यागका व्यवहार करे। कठिन-से-कठिन कामको अपने सिर लेना चाहिये, अपने ऊपर सबकी दया

प्रवचन-तिथि—वैशाख शुक्ल २, संवत् २००२, दोपहर, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

समझे। बड़ी प्रसन्नतासे काम करना चाहिये। खाने-पहननेका पदार्थ घरमें आये, उसमें अपना नम्बर पीछे समझे। सेवाका काम हो उसमें अपना नम्बर पहले रखे। अपने साथ कोई प्रेम न करे, उससे भी प्रेम करना चाहिये। एकान्तमें भजन-साधन करना चाहिये, स्त्रियोंका ज्यादा संग नहीं करना चाहिये। परचर्चा नरकमें ले जानेवाली चीज है। एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये। वाणीका संयम रखना चाहिये। स्त्रियाँ प्रायः कठोर वचन बोलती हैं। ईश्वरने जब हमें जिह्वा दी है तब वचनोंकी दरिद्रता क्यों? सत्य वचन बोले, प्रिय वचन बोले। स्त्रियाँ बच्चोंको झूठी बात समझाकर भुला देती हैं। झूठे वचनोंसे बचना चाहिये। नौकर आदिको गाली नहीं देनी चाहिये।

मनमें जो अनेक संकल्प उठते रहते हैं उनका सुधार करना चाहिये। देवताओंकी उपासना निष्कामभावसे करनी चाहिये, कामना लेकर नहीं। सकामभावको हटाना चाहिये। बड़े उत्साहके साथ सेवा करनी चाहिये। मनमें अहंकार नहीं हो, लोगोंकी सेवा तथा ईश्वरकी भक्ति कर्तव्य समझकर करनी चाहिये।

बालकोंको अच्छी शिक्षा देनी चाहिये, जिससे उनका भी कल्याण हो और अपना भी कल्याण हो। जो बालकोंको बुरी शिक्षा देते हैं, वे बालकके माता-पिता नहीं अपितु शत्रु हैं। घरमें जो बड़े हैं उन्हें प्रणाम करना चाहिये। निष्कामभावसे प्रणाम करनेसे आत्मा पवित्र होती है। बलिवैश्वदेव रोज करे तथा कोई अतिथि आ जाय उसका सत्कार करे। सबके साथ बड़ा उच्चकोटिका व्यवहार करना चाहिये। किसीने हमारे साथ उपकार किया है उसको आजीवन याद रखना चाहिये तथा हमारे द्वारा किसीका अहित हो गया हो उसे बराबर याद रखना चाहिये। हमारे द्वारा किसीका हित हो जाय उसे भूल जाय तथा किसीने आपका अहित कर दिया हो उसे भूल जाय।

❑ ❑

साधनकी स्थायी स्थिति

परमात्माका तत्त्व साकार और निराकार दोनों ही उपासकोंको लाभदायक होता है। परमात्मा क्या हैं इस बातकी स्थायी स्थिति है। एक तो कार्यसे कारणका ज्ञान होता है। आग लगी है आग नहीं दीखती, धुआँ दीखता है उससे अनुमान किया जाता है कि अग्नि है। प्रत्यक्षकी तरह अनुमान है। जितनी स्थायी स्थिति हो जाती है उतने ही राग-द्वेष कम हो जाते हैं। राग-द्वेष कम होनेसे काम-क्रोधादि कम हो जाते हैं। जितना विकार कम हो गया है उतनी ही समता है। जितनी समता है उतनी ही स्थिति अधिक हो गयी है। जितनी स्थायी स्थिति होती है उतनी ही निर्भयता आ जाती है। जब स्थायी स्थितिकी वृद्धि हो जाती है तब यमराजका भय, सरकारका भय, भूत-प्रेतका भय, साँपका भय जितने प्रकारके भय हैं वे कम हो जाते हैं, निर्भयता आ जाती है।

दोषोंका परिहार स्थायी स्थितिको बतलाता है। धुएँसे अग्निका अनुमान किया जाता है। परमात्माका स्वरूप चिन्मय है। चेतनको ही हम ज्ञानस्वरूप कहते हैं। उस ज्ञानके दो भेद होते हैं—एक वृत्तिरूप दूसरा परमात्माका स्वरूप। जैसे मनुष्य जाग्रत्-अवस्थामें है, शरीरमें चेतनता है, वह बुद्धिका वृत्तिरूप ज्ञान है। थोड़ा आलस्य आता है तो जागृति कम हो जाती है। एक विशेष जागृति होती है उसमें निद्रा आती ही नहीं, यह भी बुद्धिका वृत्तिरूप ज्ञान है।

आत्मविषयक जागृति दूसरी होती है। आत्माका जो स्वरूप है, वही आत्माका ज्ञान है। जैसे-जैसे स्थायी स्थिति बढ़ती है वैसे-वैसे वह बढ़ती है। सूर्यभगवान् जब उदय होते हैं उसके आधा घण्टे पहले सूर्यकी रोशनी-सी होती है, वैसा प्रकाश न बिजलीका हो सकता है, न अन्य किसी चीजका। वह प्रकाश बढ़ता ही जाता है, जिसे हम अरुणोदय कहते हैं। अरुणोदय ४८ मिनट पहले माना जाता है। अरुणोदयके बाद वह प्रकाश बढ़ता ही जाता है। इसी

प्रवचन-तिथि—वैशाख शुक्ल ३, संवत् २००२, प्रात:काल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

प्रकार वह चेतनता, ज्ञान बढ़ता ही जाता है रुकावट तो हो सकती है; किन्तु कम नहीं हो सकता। अभ्रकमें १,००० पुट देनी है, २०० पुट लग गयी, एक-दो पुट रोज लगती है, जितनी पुट लग चुकी उसमें कम नहीं होनेकी और ज्यादा आप चाहे मत दें, इसी प्रकार इसमें भावना पुट लगती है। ध्यान लगाया ध्यान तो दूसरे समय नहीं है; किन्तु भावना लग गयी। ध्यानसे जो स्थिति होनी थी वह हो गयी। सूर्यके प्रकाशका उदाहरण दिया, जाग्रत्-अवस्थाका उदाहरण दिया। सूर्यका प्रकाश नेत्रोंका विषय है, जागृति बुद्धिका विषय है। सूर्यका प्रकाश दूसरे ढंगका है, जागृतिका दूसरी तरहका है। नेत्रोंका विषय प्रकाश है, उसका प्रतिपक्षी अन्धकार है। वह अन्धकार प्रकाशको नहीं दबा सकता। बुद्धिका प्रकाश जो चेतनता है उसे आलस्य दबा लेता है। तीसरी बात आत्माका प्रकाश है उसका प्रतिपक्षी जड़ है। जड़ चीज माया है। उस मायाके भीतरकी जितनी जड़ता हट गयी, उतनी स्थायी हट गयी, वह वापस नहीं आ सकती, इन दोनोंसे वह ज्यादा बलवान् है। वह ज्ञान इस समय अज्ञानसे आवृत्त हो रहा है और कामसे भी आवृत्त हो रहा है। तीसरे अध्यायमें भगवान्ने उदाहरण दिया है, जैसे जेरसे गर्भ ढका हुआ है, धुएँसे अग्नि ढका हुआ है, मलसे दर्पण ढका हुआ है उसी प्रकार कामसे ज्ञान ढका हुआ है। यह शंका होती है कि ज्ञान-विज्ञानका नाश करनेवाला काम है, कामका कारण अज्ञान है फिर अज्ञान और काम बलवान् हैं या ज्ञान और विज्ञान।

वस्तुसे विचार करके देखनेपर ज्ञान और विज्ञान बलवान् हैं; किन्तु जबतक वह बच्चा है तबतक काम आदि उसे दबा रहे हैं। जैसे वटका दो पत्तेका वृक्ष है, एक इंचका पत्थर भी रख दो तो उसे दबा देगा। चिड़िया भी उसे अपनी चोंचसे काट डालेगी, किन्तु वटका यह वृक्ष इतना बड़ा हो गया, अब इसे दस मनका पत्थर भी नहीं दबा सकता, हाथी भी नहीं तोड़ सकता।

इसी प्रकार जबतक वह अपनेको सँभाल नहीं सकता तबतक

ये सब उसे दबाये हुए हैं। अन्धकारके द्वारा प्रकाश ग्रसा गया है। ज्ञान और विज्ञानको कामने आच्छादित कर रखा है। राईने पहाड़को आच्छादित कर रखा है।

जिसके अज्ञानका ज्ञानके द्वारा नाश हो गया है वह उस सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्रकाशता है।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥ (गीता ५। १६)

परन्तु जिनका वह अज्ञान परमात्माके तत्त्वज्ञानद्वारा नष्ट कर दिया गया है, उनका वह ज्ञान सूर्यके सदृश उस सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्रकाशित कर देता है।

उस परमात्माके ज्ञानकी जो बाहुल्यता है वही परमात्माका स्वरूप है। परमात्माका स्वरूप बुद्धि विशिष्ट है। बुद्धिसे वह ग्रहण करनेमें आता है। ज्ञान ही असली आनन्द है इसलिये उसे विज्ञानानन्दघन कहते हैं।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥ (गीता ६। २१)

इन्द्रियोंसे अतीत, केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण करनेयोग्य जो अनन्त आनन्द है; उसको जिस अवस्थामें अनुभव करता है और जिस अवस्थामें स्थित यह योगी परमात्माके स्वरूपसे विचलित होता ही नहीं।

परमात्मा ज्ञेय (जाननेके योग्य) हैं—

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥ (गीता १३। १२)

जो जाननेयोग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य परमानन्दको प्राप्त होता है, उसको भलीभाँति कहूँगा। वह अनादिवाला परमब्रह्म न सत् ही कहा जाता है, न असत् ही।

ज्ञान वहाँ द्वार है, जिसको जानता है वह परमात्माका स्वरूप

है। जिसका फल अमृतकी प्राप्ति यानी ब्रह्मकी प्राप्ति है, फिर वह तत्त्वसे विचलित नहीं होता।

पूर्ण स्थिति नहीं होकर भी जितना अंश स्थायीरूपसे स्थित हो जाता है, वह खरा हो जाता है। फिर वह विचलित नहीं होता।

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥ (गीता १४।२३)

जो साक्षीके सदृश स्थित होकर गुणोंके द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता और गुण ही गुणोंमें बरतते हैं—ऐसा समझता हुआ जो सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे स्थित रहता है एवं उस स्थितिसे कभी विचलित नहीं होता। वह उदासीन नहीं है, किन्तु उदासीनकी तरह है। गुणोंके द्वारा वह विचलित किया ही नहीं जा सकता।

जैसे साधकके काम जागृत हो जाता है। तब वह अपनी स्थितिसे विचलित हो जाता है। जब लोभ जागृत होता है तब झूठ-कपट कर लेता है, किन्तु परमात्माकी प्राप्तिके उत्तरकालमें वह विचलित नहीं होता, इसमें तो कहना ही क्या है, किन्तु प्राप्तिके पूर्वकी अवस्थाकी बात बतायी जाती है। '**गुणैर्यो न विचाल्यते**' यह उसके थोड़े पूर्वकी अवस्था है।

जितनी-जितनी गाढ़ अवस्था होती है, उतना-उतना वह विचलित नहीं होता। सात्त्विक आनन्द मिलनेपर जब आह्लादित हो जाता है तो वह बन्धनका हेतु हो जाता है, क्योंकि वह विचलित हो गया।

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥ (गीता १२।१५)

जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिसे रहित है—वह भक्त मुझको प्रिय है।

स्थायी स्थितिमें चेतनताकी और जागृतिकी तरी रहती है। जितनी समता है उतनी समताकी तरी है, जितनी शान्ति है उतनी शान्तिकी तरी है। परमात्माका जितना सत्त्व उसमें स्थित है वह हटानेसे

हटनेका नहीं है, मान्यताकी जितनी चीज है वह हट सकती है।

पहले मैं आर्यसमाजी था, अब सनातनी हो गया, यह क्यों हुआ। बुद्धिमें जो चीज थी वह परिवर्तित हो गयी। वह मान्यता थी; किन्तु अनुभव कोई नहीं हटा सकता।

पेटमें दर्द है, किसीने कहा यह तो भ्रम है, मान्यता है। इसे मान्यता कैसे मानें, हमें तो अनुभव हो रहा है कि दर्द है। इस प्रकारका वहाँ प्रत्यक्ष अनुभव है। दूसरेकी मान्यता वहाँ असर नहीं कर सकती। नित्य उच्चकोटिकी स्थिति रहती है। उसके प्राण भी चले जायँ, तब भी परमात्माका अस्तित्व (होनापन) उसके अनुभवसे हट नहीं सकता। बुद्धिगत चीज हट सकती है; किन्तु आत्मगत चीज नहीं हट सकती। उदाहरणके लिये समझाया जाता है।

हमलोग जब बच्चे थे तो अपने पेशाब-टट्टीमें हाथ दे देते थे। मैलेको चाटते, माँ दौड़ती, राम-राम यह तो मैला है, घृणा कराती। माँ उसके दिलमें भावना जमा रही है, फिर सब लोग कहते देखो यह तो टट्टीका हाथ ही नहीं धोता। यह बात जमते-जमते यहाँतक जम गयी कि क्या आज हम बिना हाथ धोये रह सकते हैं? इसी प्रकार संसारके यावन्मात्र पदार्थोंमें मैलेकी तरह इतनी घृणा हो जाती है। सभी एक ही प्रकारकी बात कहते हैं कि यह मैला है तो कितनी दृढ़ता हो गयी। इसी प्रकार संसारके पदार्थ दुःखरूप हैं, मैले हैं। इन्हें मैला बतानेवाले पुरुषोंके वातावरणमें हम रहें तो हमारे वैराग्य हो सकता है। वह स्थायी स्थिति है। परमात्माकी स्थिति वह है जहाँ चेतनताकी बाहुल्यता, ज्ञानकी बाहुल्यता है।

कर्णको मालूम हो गया कि मैं सूर्यके अंशसे कुन्तीसे पैदा हुआ हूँ। अब यह ज्ञान उसे भूलनेवाला नहीं है। यह यथार्थ ज्ञान है। कर्णको जन्मसे यह ज्ञान नहीं था, बादमें हुआ। उसी प्रकार हम अनादिकालसे अज्ञानी हैं; किन्तु परमात्माका ज्ञान जब हो जायगा तब वह मिटनेका नहीं है। अज्ञान है तो अनादि किन्तु

सान्त है। जितने अंशमें सान्त हो गया उतना काम हो गया। शरीरमें जितनी दूरमें आग लग जाती है, जितनी चमड़ी जल गयी वह तो आनेकी नहीं, दूसरी भले ही आये। वही चमड़ी आ भी जाय; किन्तु वह स्थिति जितनी हो गयी स्थायी हो गयी।

सोनेकी कठालीमें कई तरहकी चीजें डाली, सोना भी डाला। कूड़ा-करकट तो स्वाहा हो जायगा, दूसरी धातु भी वहाँ रह नहीं सकेगी। सोनेको आग नहीं खा सकती। कुठाली जब सोनेसे भर जायगी तब उसमेंसे जो कुछ निकलेगा वह दूसरी चीज ही निकलेगी, सोना नहीं निकलेगा, इसी प्रकार अन्तःकरणरूपी कुठाली है। भगवद्भाव सोना है, दूसरे-दूसरे भाव कूड़ा-करकट हैं, सोनेरूपी भगवद्भावसे जब अन्तःकरण भर जायगा तो भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी। सोना-सोना डालते रहो, डालते-डालते जगह भर जायगी।

जहाजमें छेद हो गया, धीरे-धीरे छेद बढ़ने लगा, पानी भरने लगा फिर डूबते देर नहीं लगेगी। इसी प्रकार क्रम-क्रम हमारा साधन बढ़ रहा है, वह छेदकी ज्यों भर रहा है। पूर्णरूप धारण कर लेगा तो संसाररूपी वृक्ष समाप्त हो जायगा।

एक आदमीमें झूठ बोलना, चोरी करना आदि बुरी आदतें हैं, इनका हठसे बुरी बात समझकर त्याग कर दिया। अनुभव नहीं है; किन्तु जब-जब संग जुड़ेगा, तब-तब वह चीज फिर जागृत होकर गिरनेकी सम्भावना है। आगे जाकर तो इतनी दृढ़ता हो जायगी कि झूठ-कपट आदिकी बुराइयाँ वह जान गया तो त्याग हो गया। स्वप्नमें कभी झूठ-कपटका काम अभी हो जाता है। आगे जाकर स्वप्नमें भी यह दोष नहीं घटेगा, वह चीज आत्मगत हो जायगी। स्वप्नमें दोष घटता है तो वह चीज अन्तःकरणमें है, वह दोष कभी जागृतमें घट सकता है; किन्तु जब स्वप्नमें भी दोष नहीं घटता तो वह अनुभवगम्य हो गया, अब दोष नहीं घट सकता। इसी प्रकार कर्मोंमें निष्काम कर्म स्थायी है।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥ (गीता २। ४०)

इस कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है और उलटा फलरूप दोष भी नहीं है; बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे रक्षा कर लेता है।

इसी प्रकार ज्ञानके मार्गमें उलटा परिणाम हो ही नहीं सकता। थोड़ी भी चीज है वह उद्धार करके ही छोड़ेगी। भगवान्‌से जो विशुद्ध प्रेम है उसका महत्त्व निष्कामभावसे भी ऊँचा है। निष्कामभाव तो ऊँचा है ही प्रेम और ज्यादा है। भगवान्‌से सकाम प्रेमका दर्जा भी देवताओंके साथ सकाम प्रेमसे बहुत ऊँचा है। भगवान् कामनाओंकी पूर्ति इसलिये करते हैं ताकि श्रद्धा बढ़नेसे वह कामना स्वतः ही छोड़ देगा।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ (गीता ४। ११)

हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ; क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं।

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा॥ (गीता ४। १२)

इस मनुष्यलोकमें कर्मोंके फलको चाहनेवाले लोग देवताओंका पूजन किया करते हैं; क्योंकि उनको कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाली सिद्धि शीघ्र मिल जाती है।

भगवान् शीघ्र फल नहीं देते, टाल-मटोल करते हैं, फल दे भी दें तो खाता बराबर नहीं करते। दूसरे देवता लोग तो ९४५ रुपया जमा है तो ९४५ रुपया देकर खाता बराबर कर देते हैं। भगवान् खाता बन्द नहीं करते।

ब्रह्मभोजमें ब्राह्मण लोग भोजन किया करते हैं, बहुत लोग

भोजन करने आते हैं। कई आदमी मिलकर भोजन कराते हैं स्वयं भोजन नहीं करते। हमारे यह स्वप्नमें भी नहीं आ सकता कि हम ब्रह्मभोजमें जाकर भोजन करें। कहनेका अभिप्राय यह है कि आत्माके अन्तर्गत वह बात इतनी गाढ़ हो गयी कि स्वप्नमें भी कभी वह बात नहीं हो सकती। वह स्थायी स्थिति है। ऐसी स्थिति जब हो जाय तो पराये धन, परायी स्त्रीपर भी वृत्ति कभी नहीं जा सकती। इसी प्रकार परमात्माके विषयकी इतनी गाढ़ स्थिति हो जाती है कि वह हट नहीं सकती।

कुदालसे भी वह स्थिति नहीं कट सकती। जैसे आत्माका विनाश करनेमें कोई समर्थ नहीं है इसी प्रकार उस स्थितिका कोई विनाश नहीं कर सकता। निष्काम कर्मका नाश नहीं हो सकता। भगवान्‌के साथ जितना प्रेम हो गया उसका नाश नहीं हो सकता। ये तीनों बातें ही आत्माके प्रमाणकी तरह हैं।

अध्यात्मविषयकी जितनी स्थायी स्थिति हो गयी है वह तो अटल हो गयी। यही भक्तिकी दृष्टिसे है, यही बात ज्ञानकी दृष्टिसे है।

भगवान्‌के अस्तित्वमें विश्वासका नाम श्रद्धा है। वह श्रद्धा साधनमें उत्साह पैदा करनेवाली है। काम, क्रोध, लोभ आदिसे न तो भक्त ही विचलित होता है, न ज्ञानी ही।

कोई आदमी किसी चीजमें तत्परतासे लगा है तो उसके मूलमें कोई चीज है। आप सत्संगका प्रचार करते हैं तो उसमें मूलमें या तो मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा है या भगवान्‌के लिये करते हैं। कोई ज्ञानी महात्मा सत्संगका प्रचार करता है उसके मूलमें हेतुरहित सुहृदता है। वह तो पूर्णकाम है, उनकी तो सभी क्रिया हेतुरहित ही है। हेतुरहित सुहृदता, असीम सुहृदता अद्‌भुत चीज है। उसे लोकसंग्रह कह सकते हैं; किन्तु लोकसंग्रह उसका कार्य है। जिस प्रकार दया भाव है, परोपकार क्रिया है, उसी तरह सुहृदता भाव है, लोकसंग्रह क्रिया है।

ज्ञान होनेके उत्तरकालमें साधनकी आवश्यकता तभीतक है जबतक भगवान्‌के दर्शन नहीं होते। नौकाकी आवश्यकता

तभीतक है जबतक पार नहीं हुए। इसी प्रकार उन्हें भी लोकसंग्रहसे क्या प्रयोजन है, साधनसे क्या प्रयोजन है।

निःस्वार्थीको तो नौकाकी आवश्यकता रहती है, स्वार्थीको नहीं। महात्माकी क्रिया संसारके कल्याणके लिये होती है। भगवान् वासुदेवकी क्रिया संसारके कल्याणके लिये है, इसी प्रकार महात्माओंकी क्रिया रहती है। कोई प्रश्न करे कि उन्हें संसारके कल्याणकी क्या चिन्ता है, यह प्रश्नकर्ताकी मूर्खता है, वह निष्काम तत्त्वको समझता ही नहीं। अबतक तो यह बात थी कि महापुरुष बननेके पूर्व वह साधन करता था, अब उससे साधन होता है। वह यह नहीं समझता कि मैं संसारके कल्याणके लिये करता हूँ; किन्तु हमलोग समझते हैं। जैसे भगवान्का स्वरूप अमृत है, प्रेम अमृत है, ज्ञान अमृत है, इसी प्रकार निष्कामभाव अमृत है। साक्षात् परमात्मा अमृत है उन परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला होनेसे वह अमृत है, परमात्माकी प्राप्तिका साक्षात् साधन है। निष्कामभाव, परमात्माके तत्त्वका ज्ञान तथा भगवान्में प्रेम साक्षात् साधन है।

समता, हेतुरहित प्रेम, विशुद्ध श्रद्धा ये भी साक्षात् साधन हैं। अतिशय प्रेमका तो मतलब है पूर्ण प्रेम। विशुद्ध प्रेमका मतलब है निष्काम हेतुरहित प्रेम। एक आदमीका भगवान्में प्रेम है, किन्तु थोड़ा है। केवल भगवान्के लिये ही भगवान्में प्रेम हो तो वह विशुद्ध है।

परमात्मामें प्रेम, परमात्मामें श्रद्धा, परमात्मविषयक समता एक नम्बर है, यह थोड़ी भी प्राप्त हो जाय तो बेड़ा पार है। वृद्धिको प्राप्त होकर तो बेड़ा पार होता ही है, किन्तु मौकेपर थोड़े-से भी काम बन जाता है। अन्तकालमें वह स्थिति हो गयी तो काम बन गया।

अग्निमें ईंधन डालकर कोई चाहे कि बुझ जाय तो यह असम्भव बात है। अग्नि अधिक-से-अधिक बढ़ती ही जायगी। इस प्रकार यह चीजें बढ़ती ही जायँगी।

❑❑